भारतीय विज्ञान की कहानी

भारतीय ज्ञान विज्ञान पुस्तकमाला 1

गुणाकर मुळे

भारतीय विज्ञान की कहानी

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली 110006 पटना 800006

मूल्य 9 00 रुपये

प्रथम संस्करण 1975

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि०
8 नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली 110006

मुद्रक विनोद प्रिंटिंग सर्विस द्वारा
गजेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली 110032

अपनी बात

यूरोप के विज्ञान तथा वैज्ञानिको के बारे में बहुत सारी पुस्तकें लिखी गई हैं, इसलिए स्कूल-कालेजों के विज्ञान के अध्यापक और विद्यार्थी इनके बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी अवश्य रखते हैं। स्कूल की पाठ्य-पुस्तकों में न्यूटन, कोपर्निकस, गलीलियो आदि यूरोप के महान वैज्ञानिको के बारे में पाठ भी दिए रहते हैं।

परंतु मैंने स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों में अपने देश के आर्यभट और भास्कराचार्य जैसे महान वैज्ञानिकों के बारे में पाठ नहीं देखे। यह बड़े ताज्जुब की बात है। यूरोप के विद्वानों ने भी प्राचीन भारत के विज्ञान की श्रेष्ठता स्वीकार की है। आधुनिक गणित की अनेक विधियों की खोज भारत में हुई है। वर्तमान दशमिक अंक-पद्धति भारत की खोज है। विज्ञान के अन्य उपांगों में भी प्राचीन भारत काफी आगे था। लेकिन हमारे विद्यार्थी इस सारी जानकारी से बेखबर हैं!

इसके कई कारण हैं। प्राचीन भारत के विज्ञान के ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इन ग्रन्थों की खोजबीन अभी अधूरी है। अक्सर ऐसा होता है कि जो पंडित पुराने ग्रंथों का अध्ययन करते हैं वे आधुनिक विज्ञान के जानकार नहीं होते और जो आधुनिक विज्ञान के जानकार होते हैं वे प्राचीन विज्ञान के अध्ययन को जरूरी नहीं समझते। इसलिए प्राचीन भारत के विज्ञान पर बहुत कम ग्रन्थ लिखे गए हैं। स्कूल के अध्यापक एवं विद्यार्थी तथा सामान्य पाठकों को दृष्टि में रखकर प्राचीन भारत के विज्ञान के बारे में लिखी गई एक भी पुस्तक मेरे देखने में नहीं आई है।

लेकिन भारतीय विज्ञान के विकास के अध्ययन की अब उपेक्षा नहीं की जा सकती। यूरोप के कई विश्वविद्यालयों में विज्ञान का इतिहास विषय पढ़ाया जाता है। हमारे देश में शायद ही किसी विश्वविद्यालय में यह विषय पढ़ाया जाता हो। भारतीय विज्ञान के विविध अंगों—गणित, ज्योतिष, रसायन आदि—पर भारतीय और विदेशी पंडितों ने कुछ ग्रन्थ लिखे हैं। अधिकांश

ग्रंथ अंग्रेजी तथा यूरोप की अन्य भाषाओं में हैं। भारत सरकार के प्रयास से इधर विद्वानों की एक मण्डली ने भारतीय विज्ञान के इतिहास के बारे में जो ग्रन्थ तयार किया है, वह भी अंग्रेजी में है। हिन्दी में बहुत कम ग्रन्थ लिखे गये हैं।

पिछले कई साल से मैं भारतीय विज्ञान के एक बृहद इतिहास के लिए सामग्री जुटा रहा हूँ। इस ग्रन्थ को लिखने के लिए अभी कुछ समय लगेगा। इसलिए मैंने यही उचित समझा कि अध्यापकों विद्यार्थी तथा सामान्य पाठकों के लिए 'भारतीय विज्ञान की कहानी' लिख डालूँ। पुस्तक आपके सामने है।

हमारे देश के कई लोग प्राचीन भारत की वैज्ञानिक उपलब्धियों को खूब बढ़ा चढ़ाकर आँकते हैं। कुछ लोग वेदों में एटम-बम बनाने की विधियाँ और उच्च गणित के फामूले भी खोजते हैं। अब धरती का मानव चन्द्रमा पर पहुँचा है तो कुछ लोग कहने लगे हैं कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी चन्द्रलोक सूर्यलोक आदि के बारे में जानकारी मिलती है। जाहिर है कि ये सब पुरानपंथी विचार हैं।

प्रस्तुत पुस्तक की सीमा में भारतीय विज्ञान के विकास की सर्वांगीण जानकारी देना सम्भव नहीं था। फिर भी मैंने इसमें प्रमुख बातों की जानकारी देने की कोशिश की है। भारतीय विज्ञान के विकास की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि का भी जहाँ-तहाँ मैंने दिग्दर्शन करा दिया है। संकुचित राष्ट्रवाद और अन्धविश्वासों से मैं मुक्त हूँ। भारतीय विज्ञान के प्रति मेरा दृष्टिकोण क्या है पुस्तक के प्रथम प्रकरण को पढ़ने से इसकी जानकारी मिल जाएगी।

मेरी जानकारी के अनुसार इस विषय की और इस तरह लिखी गई यह पहली पुस्तक है। इसलिए इसमें कुछ त्रुटियाँ भी हो सकती हैं। फिर भी, मैं समझता हूँ कि हमारे अध्यापक और विद्यार्थी इस पुस्तक में दी गई जानकारी से लाभान्वित होंगे। भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के विद्यार्थी भी इस पुस्तक को उपयोगी पाएँगे।

—गुणाकर मुले

47/11 पूर्वी पटेल नगर
नई दिल्ली 110008

अनुक्रम

हमने दिया हमने लिया

आज विज्ञान तजी से उन्नति कर रहा है। अब यह अनेक विषयो मे बँट गया है। लेकिन इन विषयो म गणित का सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त है। गणित की एक खास भाषा होती है खास चिह्न होते हैं। आधुनिक गणित म अब बहुत सारे चिह्नो का इस्तेमाल होता है। लेकिन इनम दस चिह्न सबसे अधिक महत्त्व के हैं। य दस चिह्न या सकेत हैं

1 2 3 4, 5 6 7 8 9 0

सारी गणनाएँ इन दस सकेतो से होती हैं। इन दस सकेतो से बडी से बडी सख्या लिखी जा सकती है। इसलिए कि इनम से प्रत्यक सकेत का दोहरा मूल्य है। एक प्रत्येक सकत का अपना एक स्वतन्त्र मूल्य है। दूसरे, प्रत्येक सकेत का सख्या म उसके स्थान के अनुसार मूल्य बदलता है। जसे, सख्या 1241 म अन्त के 1 का मूल्य सिर्फ एक है परन्तु आरम्भ के 1 का मूल्य 'एक हजार' है।

इन दस सकेतो म शून्य का सकेत विशेष महत्त्व का है। शून्य का अर्थ होता है 'कुछ नहीं'। बाजार म जाकर शून्य चीज' कोई नहीं खरीद सकता। लेकिन गणना म इस शून्य के बिना हमारा काम नही चल सकता। शून्य की धारणा और इसके सकेत के कारण ही यह अक पद्धति श्रेष्ठ है। इसम दस सकेतो का इस्तेमाल होता है और प्रत्येक सकेत का सख्या म उसके स्थान के अनुसार मूल्य बदलता है इसलिए इसे हम दशमिक स्थानमान अक-पद्धति कहते हैं। आज सारे ससार म इसी अक-पद्धति का इस्तेमाल होता है।

यह अक पद्धति भारत की खोज है। यह ससार को भारत की सबसे बडी देन है। भारत म लगभग दो हजार साल पहले शून्य की धारणा पर आधारित इस स्थानमान अक-पद्धति की खोज हुई थी। पहले अरब देशो मे और बाद म यूरोप के देशो म इस भारतीय अक-पद्धति का प्रचार एव प्रसार कसे हुआ, इसकी जानकारी हम आगे देंगे।

आज ससार के अधिकाश देशो म जिन अक सकेता का इस्तेमाल होता है वे य हैं 1, 2, 3 4, 5, 6 7 8, 9, 0। आज भी बहुत से लोग इन्हें अग्रजी अक कहते हैं। रोमन लिपि के साथ इनका इस्तमाल होता है इसलिए कुछ लोग इन्ह रोमन अक' भी कहते हैं। और यूरोप अमरीका के अनेक विद्वान आज भी इन्ह अरबी अक कहते हैं।

लेकिन ये भारतीय अक हैं। इन अक सकेता का जन्म भारत म हुआ। इन अक-सकेता का विकास दो हजार साल पहले के ब्राह्मी अक सकेता से हुआ है। य अक सकेत पहले पश्चिमी एशिया क देशा म पहुचे और तदनन्तर यूरोप के देशो म फल।

इस प्रकार आज सारे ससार म जिस अक पद्धति का इस्तेमाल हाता है वह भारतीय अक पद्धति है और अक सकेत भी भारतीय है। इसीलिए इन्ह अब हम भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय अक कहते हैं।

विज्ञान के क्षेत्र म प्राचीन भारत ने ससार को और भी बहुत कुछ दिया है। ईसा की छठी सातवी सदी म हमारे देश म आयभट और ब्रह्मगुप्त जसे महान गणित ज्योतिषी हुए। प्राचीन भारत के इन वैज्ञानिका के ग्रथो का अरबी भाषा म अनुवाद हुआ था। बाद म यह भारतीय ज्ञान यूरोप मे पहुचा। यूरोप क विद्वान भी स्वीकार करते हैं कि यूरोप म विकसित आधुनिक गणित भारतीय गणित पर आधारित है।

भारतीय गणित की विधियाँ यूरोप म कस पहुची यह जानन के लिए एक रोचक उदाहरण लीजिए। आधुनिक त्रिकोणमिति म इस्तमाल होने वाला अग्रेजी का एक शब्द है साइन। इस साइन के लिए भारतीय गणित का पुराना शब्द है ज्या'। 'ज्या' की रचना म जीवा की जरूरत पडती है। वृत्त की परिधि क दो बिन्दुओ को जोडन वाली सीधा रेखा का जीवा कहत है। आयभट (499 ई०) न अपने ग्रन्थ म इस 'जीवा शब्द का उपयोग किया है।

यकीन करना कठिन है पर अग्रेजी का साइन शब्द हमारे जीवा' शब्द से ही बना है। ईसा की सातवी आठवीं सदी म भारतीय ग्रथो क अरबी भाषा मे अनुवाद होने लग थ। आयभट और ब्रह्मगुप्त क ग्रन्थ भी अरब देशो मे पहुचे। अरबी अनुवादको के सामन जब यह 'जीवा' शब्द आया तो उन्होंन इसे ज्या-का-त्या ल लिया। अरबी लिपि म स्वरों क लिए अक्षर नहीं होन इसलिए उन्होंने इस जीवा शब्द को अरबी म 'ज ब' क रूप म लिखा।

अरब विजेताओ ने यूरोप के स्पेन दश पर अधिकार करके दसवा ग्यारहवा

सदी में वहां कई विद्याकेंद्रों की स्थापना की थी। अरबी विद्वानों ने न केवल संस्कृत ग्रंथों का बल्कि बहुत सारे यूनानी ग्रंथों का भी अरबी में अनुवाद किया था। इस प्रकार प्राचीन यूनानी ज्ञान को उन्होंने सदियों तक सुरक्षित रखा। अब इसी ज्ञान की खोज में यूरोप के विद्वान अरबों द्वारा स्थापित स्पेन के उन विद्याकेंद्रों में पहुंचने लगे। अरबी भाषा से लैटिन भाषा में अनुवाद होने लगा। तेरहवीं सदी से यूरोप में ज्ञान के जागरण का नया युग शुरू हुआ।

यूरोप के जो विद्वान गणित व ज्योतिष की अरबी पुस्तकों का लैटिन में अनुवाद कर रहे थे उनके सामने यह 'ज-ब' शब्द आया। इस शब्द को देखकर वे भौचक्के रह गए। उन्हें जानकारी नहीं थी कि यह शब्द मूलतः संस्कृत भाषा का है। 'ज' और 'ब' के साथ स्वर जोड़कर वे इस शब्द को कई तरह से पढ़ सकते थे तथा इसके कई अर्थ निकाल सकते थे। अंत में उन्होंने 'ज-ब' को 'जेब' के रूप में लेना पसंद किया। अरबी में 'जेब' का एक अर्थ होता है खीसा या पाकिट। उस जमाने में अरब लोग अपने कुरते का खीसा छाती के पास बनाते थे, इसलिए अरबी के 'जेब' शब्द का मूल अर्थ है 'छाती'।

यूरोप के अनुवादकों ने संस्कृत के 'जीवा' शब्द से बने हुए 'ज-ब' को 'जेब' यानी 'छाती' के अर्थ में लिया। लैटिन भाषा में 'छाती' के लिए 'सिनुस' शब्द है। इसलिए उन्होंने 'जब' का अनुवाद 'सिनुस' किया। अंग्रेजी का 'साइन' शब्द लैटिन के इसी 'सिनुस' (छाती) शब्द से बना है।

यह हुआ एक उदाहरण। दरअसल आधुनिक त्रिकोणमिति आर्यभट की विधियों पर आधारित है। आधुनिक गणित की और भी कई विधियां हैं जिनकी खोज भारत में हुई थी। गणित की कई विधियों के साथ आज यूरोप के गणितज्ञों के नाम जुड़े हुए हैं, पर किसी भी विधि के साथ प्राचीन भारत के किसी गणितज्ञ का नाम देखने को नहीं मिलता। इसका हमें विशेष खेद भी नहीं है। लेकिन हमें सबको यह जानकारी अवश्य रखनी चाहिए कि भारतीय ज्ञानियों ने क्या खोजा है और संसार को क्या-कुछ दिया है।

चिकित्सा के क्षेत्र में भी प्राचीन भारत काफी आगे था। हमारे देश में *सुश्रुत-संहिता* और *चरक-संहिता* जैसे आयुर्वेद के महान ग्रन्थों की रचना हुई। दक्षिण-पूर्व एशिया और पश्चिमी एशिया के देशों में भी हमारा चिकित्सा-ज्ञान फैला। खलीफाओं के शासन-काल में, सातवीं आठवीं सदी में, जब बगदाद जैसे नगरों में अस्पताल स्थापित हुए थे तब वहां भारतीय चिकित्सकों को बड़े सम्मान के साथ नियुक्त किया जाता था।

धातुकर्म म भी हमारा देश काफी आगे था। सबूत है दिल्ली म कुतुब मीनार के पास खडा लौहस्तम्भ। इस स्तम्भ पर एक लेख खुदा हुआ है, जिसके अक्षर 400 ई० के आसपास के हैं। अभी अठारहवी सदी तक यूरोप के ढलाईघरा म भी लोहे का इतना बडा स्तम्भ नही बन सकता था।

प्लास्टिक सर्जरी भारत की देन है। करीब दो हजार साल पहले हमारे देश म शल्य चिकित्सा के सुश्रुत-सहिता ग्रथ की रचना हुई थी। इस ग्रथ म होठ, नाक और कान की प्लास्टिक सर्जरी करने की विधियाँ बतलाई गइ हैं। यह नान हमारे देश म सदियो तक जीवित रहा। अत म अठारहवी सदी म ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अग्रेज डाक्टरा ने महाराष्ट्र के एक वद्य को नाक की प्लास्टिक सर्जरी करते देखा और इसका विवरण लदन की एक पत्रिका म छपा तभी यूरोप मे इसका तेजी से विकास हुआ। प्लास्टिक सर्जरी की एक विधि आज भी 'भारतीय विधि' के नाम स प्रसिद्ध है।

भारत ने नान विनान के क्षेत्र म ससार को और भी बहुत सी चीजें दी हैं। लेकिन नान का प्रवाह एक तरफा कभी नही होता। हमने ससार को बहुत कुछ दिया है, तो दूसरे देशो स बहुत कुछ लिया भी है। यह कहना गलत होगा कि प्राचीन काल म हमारा देश ही सबस बढा चढा था। वेदा की रचना होन के सदियो पहले प्राचीन मिस्र और मेसोपोटामिया मे गणित ज्योतिष और चिकित्साशास्त्र पर स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी जा चुकी थी।

समय समय पर हमारे देश म बाहर स बहुत सारे लोग आये और यहाँ बसकर भारतीय सस्कृति म घुल मिल गये। य लोग अपने साथ नया नान लाये। आयभाषी लोग इस देश मे बाहर म आये। ये अपने साथ लोह का ज्ञान लाय, घोडो से जुतने वाले रथा का ज्ञान लाये।

सिकन्दर के हमले के बाद हमारा देश यूनानियों के अधिक निकट सपक म आया। बहुत से यूनानी पश्चिमोत्तर भारत म बस गय। इनस हमने अनक बातें सीखी। यूनानियो के बाद मध्य एशिया से अनक मानव समूह भारत म आय और यहा की जनता क साथ घुल मिल गये। इनसे भी हमन बहुत सी बातें सीखी है।

पाचवी छठी सदी म हमारे देश म वराहमिहिर एक महान ज्योतिषी हुए। उन्होन पचसिद्धान्तिका नामक एक ग्रन्थ लिखा था। इस ग्रन्थ म वराह ने यूनान व रोम क ज्योतिष नान की भी जानकारी दी है। वराह उदार वृत्ति के विद्वान थे। उन्होने लिखा है कि दूसरो के श्रेष्ठ नान को हम उदारता स स्वीकार

करना चाहिए। इसके समयन मे उन्होंने प्राचीन काल के गर्ग मुनि का वचन उन्धत किया है

> म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक शास्त्रमिद स्थितम ।
> ऋषिवन्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्देवविद द्विज ॥

साराश यूनानी लोग म्लेच्छ होने पर भी शास्त्रो के जानकार हैं। इसलिए उन्हे ऋषियो की तरह पूज्य मानना चाहिए।

इस श्लोक से ही पता चलता है कि यूनानियो से हमने अनक बातें सीखी हैं। हमारे देश के ज्योतिष-ग्रन्थो मे राशियो के लिए त्रिय तावुरि कौप्य तौक्षिक आदि शब्दा का प्रयोग हुआ है। य यूनानी भाषा के शब्द हैं। केन्द्र हेलि, होरा आदि भी यूनानी शब्द ही हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि ज्योतिष की कई बाता के लिए हम यूनानियो के ऋणी हैं।

अरवो ने हमसे बहुत कुछ लिया फिर भी हम उनके ऋणी हैं। इसलिए कि उन्होंने भारतीय ज्ञान विज्ञान का यूरोप म प्रचार किया। अरब लोग ज्ञान विज्ञान के प्रेमी थे। उन्होंने भारत और प्राचीन यूनान के ज्ञान को सुरक्षित रखा और विकसित किया।

हम अल्बेरुनी (1030 ई०) जसे विद्वानो के भी ऋणी हैं। ग्यारहवी सदी म अल्बरुनी ने भारत के ज्ञान विज्ञान के बारे मे एक महान ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ स हमें जानकारी मिलती है कि उस समय तक हमारा देश ज्ञान विज्ञान म कितनी तरक्की कर चुका था। भारतीय विज्ञान के बार म इतनी ठोस जानकारी हमे किसी भी दूसरे ग्रथ म नही मिलती।

आरम्भ म अरबा को हमने ज्ञान विज्ञान की बातें दी। उन्होंने तरक्की की। फिर हमने उनसे लेना शुरू किया। यूनानी चिकित्सा-पद्धति अरबों स ही हम मिली है। अठारहवीं सदी क प्रथम चरण मे जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह न दिल्ली जयपुर उज्जन आदि स्थाना म वेधशालाएँ (जन्तर-मन्तर) खडी की। य वेधशालाए समरकन्द की वेधशाला के नमून पर बनी थी। समरकन्द की वेधशाला प्रख्यात ज्योतिषी उलूग-बेग (1394 1449 ई०) न बनवाई थी। सवाई जयसिंह न ज्योतिष व गणित के अनेक अरबी ग्रथा का सस्कृत मे अनुवाद करवाया था।

इस प्रकार प्राचीन काल म ज्ञान विज्ञान के आदान प्रदान का यह सिलसिला हमशा जारी रहा। यदि हम कह कि भारत न ससार को दिया बहुत है और लिया कुछ भी नही ता यह पोंगापथी की बात होगी।

प्राचीन भारत क विज्ञान के बारे मे और एक बात साफ-साफ समझ लेनी

चाहिए । हमारे देश म आज भी ऐसे कई लोग हैं जो समझते हैं कि दुनिया का सारा ज्ञान वेदो म भरा हुआ है । कुछ लोग यहां तक कहते हैं कि वेदा म एटम बम बनाने के फामूले हैं । कुछ धार्मिक नेताआ ने यह भी प्रचार किया है कि वेदो क मत्रा म आधुनिक उच्च गणित के फामूल छिपे हुए हैं । इस ढकोसले को सिद्ध करने क लिए एक धर्माचाय ने एक ग्र थ भी लिखा है ।

वेदो म उच्च गणित की कोई जानकारी नही है । इस बात की सचाइ के लिए दो सबूत हैं । एक वेद गणित के ग्रथ नही है। दरअसल वदिक समाज को इनकी जरूरत ही नही थी । अपने पशुधन की गिनती करने के लिए ही उन्ह छोटी मोटी गणनाएँ करनी पडती थी । दूसरे, वदिक समाज अभी गाव ही बसा चुका था । अभी वे कबीलाई व्यवस्था से बहुत आगे नही बढ थ । एसे समाज को जटिल गणनाआ की जरूरत नही पडती ।

दूसरी तरफ भारत मे आयभाषी लोगा के आगमन क पहले यहाँ एक विकसित नागरी सभ्यता अपनी उन्नति के शिखर पर पहुच चुकी थी । यह थी सिधु सभ्यता । सिधु सभ्यता के लोग निश्चित रूप से आर्यों से बढे चढ थे ।

तात्पय यह कि किसी भी देश के विज्ञान को तत्कालीन समाज की आर्थिक सामाजिक एव राजनीतिक परिस्थितियो से जुदा करके हम समझ नही सकते । जब राजाआ का केन्द्रीय शासन आरम्भ हुआ, राज्यादेश जारी किए जाने लगे, आय-व्यय का हिसाब रखा जाने लगा तभी लेखन कला और गणित का विकास हुआ है ।

प्राचीन काल के विज्ञान का जादू-टोने तथा धम कम के साथ भी गहरा सम्बन्ध रहा है । अथववेद मे जादू-टोने के साथ ही हम चिकित्सा की थोडी जानकारी मिलती है । प्राचीन भारत म धम कम के साथ ही रखागणित का विकास हुआ था । ज्योतिष का आरभिक विकास भी धार्मिक विश्वासा के साथ जुडा हुआ है । ससार की सभी प्राचीन सभ्यताओ मे धम और विज्ञान का चोली दामन का रिश्ता रहा है । आधुनिक काल मे ही विज्ञान अपने को धम और दशन से अलग कर पाया है ।

प्राचीन विज्ञान धम-कम से जुडा हुआ था, इसलिए समाज क एक वग विशेष का इस पर एकाधिकार रहा है । यह था पुरोहित पडितो का वग । आम जनता को ज्ञान विज्ञान से दूर रखने के लिए और इसे अपने वग तक ही सीमित रखने के लिए पुरोहित-पडितो ने हर तरह के हथकडे अपनाए है । इस खास वग ने विज्ञान को रहस्य का जामा पहनाया आरम्भ म इस केवल गुरु शिष्य परम्परा म जीवित रखा और बाद म इसे उच्च वग की सुसस्कृत भाषा

में प्रस्तुत किया। इस प्रकार, प्राचीन काल में ज्ञान विज्ञान की बातें केवल एक विशिष्ट वर्ग तक सीमित रही। दूसरे देशों में भी यही हुआ है।

अतः विज्ञान के इस वर्ग-स्वरूप को हमें सदैव ध्यान में रखना चाहिए। हमें वैज्ञानिक विकास की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि को भी ध्यान में रखना चाहिए।

अब हम भारतीय विज्ञान की सिलसिलेवार कहानी शुरू करते हैं।

पाषाण-युग के महान आविष्कार

इस धरती पर मानव का अस्तित्व पिछले करीब दस लाख साल से है। इसलिए विज्ञान की कहानी भी इतनी ही पुरानी है।

आज हम जानते हैं कि हमारी यह पृथ्वी करीब पाच अरब साल पहले अस्तित्व मे आयी थी। करीब दो अरब साल पहले तापमान की अनुकूल परिस्थितियो म अणु परमाणुओ के मल जोल से इस धरती पर प्राथमिक जीवो का प्रादुर्भाव हुआ। धीरे धीरे इन जीवो का विकास आरम्भ हुआ।

करीब दस लाख साल पहले वानर जस कुछ प्राणी पीछे के अपने दो परो पर खडे होकर चलने लगे। सामन के उनके दो पर चलन के श्रम से मुक्त हुए। सामने के उनके दो पर तब स हाथ बने। अपने इन आजाद हाथो स वे प्राणी अब नये काम कर सकते थे। इन्ही हाथो के श्रम ने उन प्राणियो

आज से करीब दस लाख साल पहले आदिम मानव ने पहली बार हथियार उठाये।

को 'मानव' बनाया।

करीब दस लाख साल पहले पहली बार उस प्राणी ने अपने हाथों में हड्डी या लकड़ी का डंडा पकड़ा। उसका हाथ लंबा हो गया। उसके हाथ को अतिरिक्त बल मिला। हाथ में पकड़े हुए डंडे से वह प्राणी छोटे मोटे शिकार कर सकता था। उस डंडे से वह छोटे मोटे पत्थर ढकेल सकता था।

करीब दस लाख साल पहले उस प्राणी के आजाद हुए हाथों ने पत्थर उठाया। इन पत्थरों को वह फेंक सकता था। इन पत्थरों से वह छोटे मोटे जानवरों को मार सकता था। इन पत्थरों ने उसके हाथों को कई गुना बलशाली बनाया। एक पत्थर से दूसरे पत्थर को तोड़-ताड़कर और तराशकर वह नुकीले तथा धारदार हथियार बनाने लगा।

इस प्रकार उस आदिम मानव के हाथ अधिक बलशाली बने। हाथों की इस मेहनत ने उस आदिम मानव की बुद्धि को पैना बनाया और उसे विकास की ओर तेजी से आगे बढ़ाया।

उस आदिम मानव ने पत्थरों के तरह-तरह के औजार बनाए। और भी कई चीजें खोजीं। हमें इन्हीं के बारे में जानना है। लेकिन पहले यह जान लेना जरूरी है कि कई लाख साल तक आदमी मुख्यतः पत्थरों के हथियारों का ही इस्तेमाल करता रहा है। इसलिए मानव के इतिहास के इस लम्बे काल को हम पाषाण युग का नाम देते हैं।

करीब छः हजार साल पहले आदमी ने तांबे की खोज की। तब से तांबे के औजार बनने लगे। तांबे के साथ करीब दस प्रतिशत टीन मिलाने से काँसा बनता है। इन धातुओं की खोज के साथ मानव के इतिहास का एक नया युग शुरू होता है। इस युग को हम ताम्रयुग या काँस्ययुग कहते हैं। प्राचीन भारत की सिंधु सभ्यता ताम्रयुग की सभ्यता थी। इस सभ्यता की वैज्ञानिक उपलब्धियों की जानकारी हम अगले प्रकरण में देंगे।

आज से करीब साढ़े तीन हजार साल पहले लोहे की खोज हुई। तब से लोहे के औजार बनने लगे। तब से लौहयुग की शुरुआत हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव ने अपने विकास का सबसे लंबा समय पाषाण युग में बिताया। इस बात के पक्के सबूत मिले हैं कि पाँच लाख साल पहले का मानव पत्थर के औजारों का इस्तेमाल करता था और आग की खोज कर चुका था। चीन और जावा से ऐसे पुरातन मानव की हड्डियाँ भी मिली हैं। अफ्रीका से इससे भी कुछ अधिक पुरातन मानव के अवशेष व औजार मिले हैं।

वैज्ञानिकों ने लव पाषाण युग को मुख्यत दो भागों में बाँटा है—पुरा पाषाण युग और नवपाषाण युग। पुरापाषाण युग का मानव छोटे समूह बना कर रहता था, पत्थरों के औजारों का इस्तेमाल करता था, शिकार करके तथा बटोरकर भोजन की सामग्री जुटाता था, आग की खोज कर चुका था और भाषा को भी जन्म दे चुका था।

पाषाण-युग के अधिक सुघड औजार। इनमे फल, बरमा, धारदार चक्ती तथा खुरचनियाँ हैं।

आज से लगभग दस हजार साल पहले नवपाषाण युग की शुरुआत हुई। इस युग में भी पत्थर के ही औजार बनते थे किन्तु ये औजार अधिक सुघड और सूक्ष्म थे। अब आदमी ने खेती करना शुरू किया और कुछ पशुओं को पालतू भी बनाया। अब आदमी ने गाँव भी बसाए। सामाजिक जीवन का आरम्भ हुआ। फसल और ऋतु से सम्बन्धित कुछ आदिम संस्कार अस्तित्व में आए। उपचार के कई तरीके ज्ञात हुए। आदमी जड़ी बूटियों से अपना इलाज करने लगा। शल्य चिकित्सा के भी कुछ तरीके खोजे गए।

दरअसल चिकित्साशास्त्र सबसे प्राचीन विज्ञान है। उस जमाने का चिकित्सा ज्ञान जादू टोने से जुड़ा हुआ था। ओझा ही उस जमाने के वैद्य थे। लेकिन उस जमाने में अभी देवताओं की या किसी सर्वशक्तिमान ईश्वर की कल्पना नहीं की गई थी। उस जमाने के मानव को अभी इन कल्पनाओं की जरूरत भी नहीं थी। इसलिए उस जमाने में अभी मन्दिरों और पुरोहितों का कोई अस्तित्व नहीं था। वह आदिम साम्यवाद का युग था। हम इसी लव युग

के कुछ महान आविष्कारों के बारे मे जानकारी प्राप्त करनी है।

पुरापाषाण-युग की किसी भी खोज का श्रेय हम किसी एक देश या एक मानव समूह को नही दे सकते। हमारे पास यह जानने के लिए आज कोई साधन नही है कि पहली बार किस मानव या मानव समूह ने पत्थर के औजार बनाए थे या आग की खोज की थी। कई देशो से पाषाण-युग के औजार मिले हैं। हमारे देश मे पुरापाषाण युग के मानव की हड्डिया तो नही मिली हैं लेकिन औजार मिले हैं। पत्थर के ये औजार उत्तर भारत म सोहन नदी की घाटी म मिले हैं, मध्यभारत और महाराष्ट्र मे मिले हैं, कृष्णा नदी की घाटी म मिले हैं और दक्षिण मे मद्रास के आसपास मिले हैं।

हजारा साल के अनुभव के बाद ही आदिम मानव पत्थरो के तरह-तरह के हथियार बना पाया था। पत्थर का चुनाव तथा उस विशेष विधिया से तराशना या उसम छेद करना सरल काम नही था। यह तकनीकी की शुरुआत थी। कुछ आदमी पत्थर के औजार बनान मे अधिक कुशल हाते हागे।
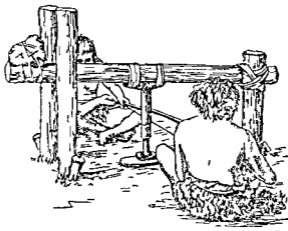
चकमक-पत्थर मे छेद करने की एक प्रागतिहासिक विधि

आदमी ने पहली बार आग की खोज कसे की और इस पर कैसे अधिकार प्राप्त किया यह जानने के लिए आज हमारे पास कोई साधन नही है। जहाँ ज्वालामुखी हो या प्राकृतिक गस तथा तल के स्रोत हो एस ही स्थानो पर जगली आग भडकती है। गरमी मे घषण के कारण भी कभी-कभी जगलो म आग लग जाती है।

उस जमाने म आग को जलते रखना बडा कठिन काम रहा होगा। उस जमाने म आग को विशेष महत्त्व दिया जाता था इसीलिए हम अग्नि के बारे म अनेक प्राचीन आख्यान सुनने को मिलते हैं।

आग की खोज होने पर आदमी न खाने की चीजा का भूनन और पकान के तरीके खोज निकाले। आरम्भ म उसन टोकरियाँ बनायी। इन टोकरियो म गीली मिट्टी लगाकर उसने बतन बनाए। फिर उसने मिट्टी के बतन बनाए और उन्ह आग म पकाया। आरम्भ म वह गरम पत्थरो का गड्ढा या बतना म डालकर चीजा को पकाता था। फिर वह बतना म इन चीजा को पकाने या उबालने लगा। पकाने की इस क्रिया के साथ पुरातन रसायन न जन्म लिया।

पुरापाषाण-युग के मानव नदी के आसपास रहते थे। व डडे के एक सिरे को नुकीला करके या उस पर नुकीला छोटा पत्थर जोडकर मछली तथा अन्य छोटे प्राणिया का शिकार करते थे। उन्होंने नदी को पार करने के साधन भी खोज निकाले थे।

पुरापाषाण युग का मानव तीर व धनुष की खोज कर चुका था। वह सामूहिक रूप से जगली जानवरा का शिकार करता था। अभी उसने खेती करना नही जाना था। वह कद-मूल और जगली अनाज बटोरता था। यह मुख्यत स्त्रिया का काम था। छोटे बच्चे लकडी बटोर बटोरकर आग को जलती रखते होगे।

मानव ने भाषा की खोज कसे की इसके बारे मे कई मत हैं। लेकिन इतना निश्चित है कि पाँच लाख साल पहले का मानव भाषा की खोज कर चुका था। हमारे कई शब्दो के मूल अथ उस जमाने की जीवन पद्धति से मेल खाते हैं।

पुरापाषाण युग लाखो साल तक चला। विभिन्न प्रदेशो के मानव समूह एक दूसरे के सम्पक म आए और उन्होने एक दूसरे के तकनीक सीखे। उस समय के आविष्कार आज हम विशेष महत्त्व के नही जान पडते। लेकिन उस जमाने के मानव समाज के लिए उनका बडा महत्त्व था। कल्पना कीजिए कि उस जमाने के मानव को पत्थर के किसी खास प्रकार के औजार की खोज होने से कितनी खुशी हुई होगी! एक पत्थर को दूसरे पत्थर पर मारकर या दो सूखी लकडियो को घिसकर जब उसने आग पदा की होगी तो वह खुशी से नाच उठा होगा।

आज से करीब दस हजार साल पहले मानव नवपाषाण-युग मे प्रवेश करता है। अब उसके पत्थर के औजार बेहतर थे सुघड और सूक्ष्म थे। अब

उसने छोटे छोटे तेज धार वाले पत्थरों को लकडी के साथ जोड़कर आरी और हसिया जसे हथियार बना लिये थे। इन हथियारो से वह फसल काट सकता था लकडी काट सकता था। कृषिकर्म और बढई के काम की शुरुआत हुई।

पत्थर के हथियार और आग की खोज के बाद कृषिकर्म मानव का सबसे बडा आविष्कार है। कृषि ने मानव के भौतिक एव सामाजिक जीवन को नया आधार प्रदान किया। लेकिन हम नही जानते कि मानव ने ठीक किस प्रकार खेती करना सीखा। इतना निश्चित है कि लबे तजुर्बे के बाद ही आदमी ने बीज बोना, फसल काटना और अनाज तयार करना सीखा होगा।

हम बता चुके हैं कि पुरापाषाण-युग म कद-मूल जमा करना और अनाज बटोरना मुख्यत स्त्रियों का काम था। इसलिए सम्भव यही जान पडता है कि कृषिकर्म की खोज सबसे पहले स्त्रिया ने ही की होगी। आरम्भ म बलो द्वारा हल की जोताई शुरू होने तक, कृषिकर्म मुख्यत स्त्रिया का ही धधा था। इसलिए उस जमाने म स्त्रिया के श्रम को विशेष महत्त्व दिया जाता था।

कृषिकर्म के लिए एक स्थान पर लबे समय तक टिके रहना जरूरी हो जाता है। इसलिए आदमी ने गांव बसाय। पश्चिम एशिया के देशो मे करीब नौ हजार साल पहले के गांवा म पुरावशेष मिले हैं। हमारे देश म करीब छ-सात हजार साल पहले के गांवा के अवशेष मिले हैं।

पुरापाषाण-युग का मानव कुत्ते को पालतू बना चुका था। अब नवपाषाण-युग म, कृषिकर्म की स्थापना के बाद उसने भेड-बकरी और गाय-बल को भी पालतू बनाया। इन पशुआ से उसे मास मिलता था। जोताई और माल ढोने म भी इन पशुआ का इस्तेमाल होने लगा।

इस युग का और एक महान आविष्कार है चाक। कुम्हार के चाक के 5200 साल पहले के अवशेष मिले हैं। पहिए की बलगाडियां की खोज कुछ बाद म हुई—ताम्रयुग म। लेकिन नवपाषाण-युग का मानव कपडे बुनना जानता था। उसके घर घास फूस और लकडी के होते थे। अब वह मिट्टी के बढिया बरतन बना लेता था और इन पर चित्रकारी भी करता था। दरअसल, पिछले करीब पच्चीस हजार साल से मानव चित्रकारी जानता है। यूरोप की कई प्राचीन गुफाओं में पशुओं के सुदर चित्र मिले हैं, जिनम विविध रगो का इस्तेमाल किया गया है। हमारे देश म भी मिर्जापुर के पास की पहाडियो मे और मध्यभारत मे कई स्थानो पर नवपाषाण युग के चित्र मिले हैं। इन चित्रो म मुख्यत शिकार के दृश्य अकित किए गए हैं।

नवपाषाण युग का मानव चन्द्रमा की घटती-बढ़ती कलाओ के आधार पर

समय का हिसाब रखने लग गया था। अब कृषिकर्म के लिए उस ऋतुओं का ज्ञान जरूरी हो गया था। सूर्य और कुछ प्रमुख तारों की गतियों के आधार पर वह ऋतुओं का हिसाब रखने लगा। इस प्रकार पंचांग ने जन्म लिया।

आदमी ने अभी अक्षरों की खोज नहीं की थी। लेकिन उसने कुछ भाव चिह्नों को बना लिया था। रेखाओं से वह छोटी संख्याओं को व्यक्त करने में समर्थ था। दरअसल लिपि के पहले ही अंक-संकेतों की खोज हो चुकी थी।

नवपाषाण युग का मानव धातु के औजार बनाने में समर्थ नहीं था। तांबे को शुद्ध करने और गलाने के लिए ऊँचे तापमान की जरूरत पड़ती है। तांबे और लोहे जैसी धातुएँ खनिजों के रूप में ही पायी जाती हैं। लेकिन चांदी, सोना और तांबे के छोटे छोटे डल्ले कभी-कभी शुद्ध रूप में भी मिल जाते हैं। नव-पाषाण-युग के मानव ने इस सोने चांदी और तांबे के आभूषण बनाए।

जब से तांबे के हथियार बनने लगे, तब से ताम्रयुग की शुरुआत हुई। प्राचीन भारत की सिंधु सभ्यता ताम्रयुग की सभ्यता थी।

सिन्धु सभ्यता की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

सन् 1920 तक हम सोचते थे कि वदिक सभ्यता ही हमारे देश की सबसे पुरानी सभ्यता है। लेकिन यह बात गलत सिद्ध हुई। 1920 के बाद आज के पाकिस्तान मे पुराने दो बडे नगरो की खोज हुइ। ये नगर थे मोहनजोदडो और हडप्पा। मोहनजोदडो सिन्धु प्रात म सिन्धु नदी के तट पर है और हडप्पा पजाव म रावी के तट पर। धीरे धीरे सिन्धु नदी की घाटी मे इस सभ्यता के और भी कई स्थल खोजे गए।

सन् 1947 म भारत विभाजन के बाद ये स्थल पाकिस्तान म चले गए। लेकिन उसके बाद भारतीय पुराविदो न सिन्धु सभ्यता के करीब सौ नये स्थल खोजे हैं। इनमे लोथल (गुजरात) कालीबगा (राजस्थान) और रोपड (पजाव) प्रमुख स्थल हैं। सिन्धु सभ्यता का विस्तार पश्चिम म बलूचिस्तान तक, पूव म गगा-यमुना के दोआव तक और दक्षिण म नमदा तथा गोदावरी की घाटियो तक दखन को मिलता है। सिन्धु सभ्यता को हडप्पा सस्कृति के नाम स भी जाना जाता है।

सिन्धु सभ्यता के जो पुरावशेष मिले हैं उनके अध्ययन से पता चलता है कि 3000 ई० पू० के आसपास इस सभ्यता का उदय हुआ और 1500 ई० पू० के आसपास इसका अन्त हुआ। मिस्र इराक (मेसोपोटामिया) और चीन म भी इतनी ही प्राचीन सभ्यताओ की खोज हुई है। नील दजला फरात, सिन्धु, चीन और याङ्त्सी जैसी विशाल नदियो की घाटियो म इन सभ्यताओ का उदय हुआ इसलिए इन्हे हम नदी घाटी की सभ्यताएँ कहते हैं।

सबसे पहले इन सभ्यताओ की प्रमुख विशेषताओ को समझ लेना जरूरी है। पहली बार ताँबे और काँसे के औजार बने, इसलिए य ताम्रयुग अथवा काँस्ययुग की सभ्यताएँ हैं। लेकिन अभी पत्थर के औजारो का भी खूब इस्तेमाल होता था।

इस युग म कृषिकम का विस्तार हुआ। नदियो पर बाँध बाँधे गए और नहरें निकाली गयी। मौकाएँ बनीं। पहिया वाली बैलगाडियाँ अस्तित्व म

आयी। अतिरिक्त अनाज जमा होने लगा।

इस युग म नगरा की स्थापना हुइ। पकाई हुई इटा में कई मजिल मकान बनने लगे। पालिश किए हुए मिट्टी के सुदर बतन बनने लगे, जिन पर बढ़िया चित्रकारी होती थी। नगरा की स्थापना के साथ समाज का वग विभाजन हुआ। कारीगरा और व्यापारिया के पर्गे अस्तित्व म आए। व्यक्तिगत सम्पत्ति ने जन्म लिया। साहूकार पदा हुए। दासप्रथा का उदय हुआ। राज-व्यवस्था ने जन्म लिया। कानून बनने लग।

नगरा के केन्द्रभाग म प्रमुख देवता के मदिर बनने लगे। आसपास छोटे माटे देवताआ के मदिर हाते थे। ये मदिर शासन व सम्पत्ति के प्रमुख केन्द्र होत थ। इन मदिरो के इद गिद ही नगरा का विकास हुआ। पुरोहित राजाआ के एक नये वग का उदय हुआ।

उस जमाने म य पुरोहित ही ज्ञान विज्ञान के अधिकारी थे। ज्ञान विज्ञान की बातें प्रमुखत इस पुरोहित वग तक सीमित थी। ये पुरोहित चिकित्सा व ज्योतिष के जानकार थे। सम्पत्ति न जन्म लिया तो उसका हिसाब रखने के लिए अक पद्धति और अकगणित ने जन्म लिया। नगर निर्माण और खेता के बटवारे के लिए रेखागणित का ज्ञान जरूरी था। पुरोहित लोग चन्द्र सूय और तारो की गतियो का लेखा जोखा रखन लग। पहले चान्द्र पचाग और फिर सौर पचाग बने। ज्योतिष विज्ञान न ज म लिया।

इस युग म पहली बार लिपियो की खोज हुई। तब से मानव अपन विचारा को लिपिबद्ध करके रखन लगा।

ताम्रयुगीन सभ्यताआ की इन प्रमुख विशेषताआ की पृष्ठभूमि म अब हम सिन्धु सभ्यता की वज्ञानिक उपलब्धिया पर विचार करेंगे।

सबसे पहले लिपि को लीजिए। सिधु सभ्यता क लोगा की अपनी एक लिपि थी, लकिन अभी तक इस लिपि को पढ पाना सम्भव नही हुआ है। प्राचीन मिस्र व मसोपोटामिया के लोग भी लिपि को जन्म द चुके थे। उन लिपियो को अब हम पढ सकत हैं। उनकी पुस्तका को भी हम पढ सकत हैं। मिस्र के लोग पत्थरा की दीवारा पर अपने लेख खुदवात थे। वे पपीरस-कागज पर भी लिखते थे। मेसापोटामिया के लोग मिट्टी के फलका पर लिखत थे। उनके लेख पढे गए हैं इसलिए उन सभ्यताआ के बार म अधिक ठोस जानकारी मिलती है।

सिधु सभ्यता की लिपि के अन्तर मुख्यत छोटी छोटी मुहरा पर खुदे हुए

हैं। हाथीदांत व सलखडी की मुहरों पर लिपि संकेतों के साथ-साथ मनुष्यों और पशु-पक्षियों की आकृतियां उकेरी हुई हैं। सिन्धु सभ्यता का ऐसा कोई लेख न मिला है जिसमें बीस से अधिक संकेत हों। इस लिपि में भिन्न भिन्न करीब तीन सौ संकेत हैं। इतने संकेतों वाली लिपि वर्णमालात्मक नहीं हो सकती। ताम्रयुग में अभी वर्णमाला की खोज नहीं हुई थी। उस समय की ये लिपियां मुख्यतः भावचित्रात्मक थीं।

सिंधु सभ्यता की मुहरें जिन पर सिंधु लिपि के संकेत उत्कीर्ण हैं। ऊपर दायीं ओर की मुहर 'पशुपति-मुद्रा' के नाम से प्रसिद्ध है।

चिकित्सा, अंकगणित, ज्योतिष और शासन-व्यवस्था के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए मिस्र और मेसोपोटामिया से पर्याप्त लिखित सामग्री मिली है। परन्तु सिन्धु सभ्यता से वैसी सामग्री नहीं मिली है। सिन्धु लिपि पढ़ भी ली जाय तब भी हम अधिक जानकारी नहीं मिलेगी। इसलिए सिन्धु सभ्यता के अनेक स्थलों से जो पुरावशेष मिले हैं उन्हीं के आधार पर हम उस युग के विज्ञान के बारे में कुछ बातें जान सकते हैं।

धातुकर्म को लीजिए। प्रकृति में सोना और चांदी शुद्ध रूप में मिल जाते

हैं। इसलिए पाषाण युग का मानव ही इन धातुओं की खोज कर चुका था। वह इन धातुओं के आभूषण बनाता था। तांबा भी कभी-कभी छोटे डल्लों के रूप में मिल जाता है। इसलिए पाषाण युग का मानव तांबे से भी परिचित था।

लेकिन अधिक तांबा खनिजों के रूप में ही मिल सकता है। ऊँचे तापमान में इन खनिजों को तपाकर ही शुद्ध तांबा प्राप्त किया जा सकता है। तांबा 1083 सेंटीग्रेड तापमान पर पिघलता है और 2360 सेंटीग्रेड पर उबलता है। जब आदमी के लिए इतना ऊँचा तापमान प्राप्त करना संभव हुआ तभी वह तांबे के औजार बना पाया।

नदी घाटी सभ्यताओं के लोग कच्ची धातु से शुद्ध तांबा इस प्रकार प्राप्त करते होंगे एक गड्ढा बनाकर उसमें आग जलाई जाती थी। उस पर तांबे

सिंधु सभ्यता के एक प्रमुख स्थल लोथल (काठियावाड) से प्राप्त तांबे और कांसे की वस्तुएँ। इनमें दायीं ओर बीच में देखिए तांबे की ढली हुई किसी पक्षी की मूर्ति। (चित्र भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के सौजन्य से)

की कच्ची धातु डाल दी जाती थी। फिर ऊपर से लकड़ियां डाल दी जाती थीं। लगभग पूरे दिन आग को धधकता रखा जाता था। उस समय तक भाथी या धौंकनी की खोज हो चुकी थी। इन धौंकनियों से उस गड्ढे की आग को धधकती रखा जाता था।

अंत में उस गड्ढे के नीचे तांबा जमा हो जाता था। आरम्भ में उस तांबे को पीट पीटकर औजार व आभूषण बनाए जाते थे। फिर आदमी ने यह भी जाना कि तांबे को गलाकर सांचों में ढाला जा सकता है। भट्ठी और भाथी में सुधार हुआ तो तांबे की ढलाई संभव हुई।

मोहनजोदड़ो से प्राप्त करीब 4500 वर्ष पुरानी 'नर्तकी बाला' की कांसे की मूर्ति। ऊंचाई 10.8 सेंटीमीटर। यह मूर्ति मधुच्छिष्ट विधान से ढाली गई है।

राजस्थान म ताव की खानें है। इसलिए सभव यही जान पडता है कि सिन्धु सभ्यता के लोग यहा की खानो मे तांबे की कच्ची धातु प्राप्त करते थे। उस समय सिन्धु की घाटी म घन जगल थे इसलिए लकडी की कोइ कमी नहा थी। उनके मकान पकाई हुई इटा के बनत थे। इटो को पकान के लिए भी उन्हें काफी लकडी की जरूरत पडती होगी।

तांबा कुछ मुलायम धातु है। इसक साथ यदि बीम प्रतिशत तक टीन (वग) मिलाया जाय तो कासा बनता है जो कुछ कठार धातु है। सिन्धु सभ्यता के लाग कासे क औजार बनाते थे। वे कासे को ढालना भी जानत थे। मोहनजोदडो स कासे की ढली हुई एक मूर्ति मिली है, जा नतकी बाला क नाम से प्रसिद्ध है।

एसी मूर्तियाँ खास ढग से बनाई जाती थी। पहले उस मूर्ति का मोम का ढाचा बनाया जाता था। फिर इसके ऊपर मिट्टी की मोटी परत चढा दी जाती थी। तदनतर गरम करक उस मोम को बाहर निकाला जाता और उसम पिघला हुआ तांबा या कासा भात दिया जाता। नतकी बाला की मूर्ति इसी विधि स बनी है। इस विधि को मधूच्छिष्ट विधान कहत हैं।

लेकिन यह समझना गलत होगा कि उस जमान म बडी सख्या म तावे या काँसे के औजार बनत थ। य धातुएँ बडी कठिनाई से प्राप्त होती थी इसलिए ताव कांस क औजार व बतन उच्च वग के लोगा के लिए ही सुलभ थ। अधिकतर लोग अभी पत्थरो क औजारा और मिट्टी के बतना का ही इस्तमाल
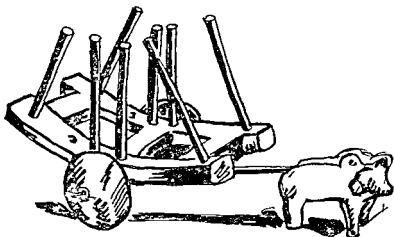
मोहनजोदडो से प्राप्त बलगाडी का एक खिलौना

1 2, 4 8, 16, 32 64, 160, 200 320, 640 और 1600 के अनुपात म हैं। इनम 13 64 ग्राम के 16 अनुपात वाले बाँट अधिक सख्या मे मिले हैं। इसलिए जान पडता है कि यही उनका इकाई का बाट रहा होगा।
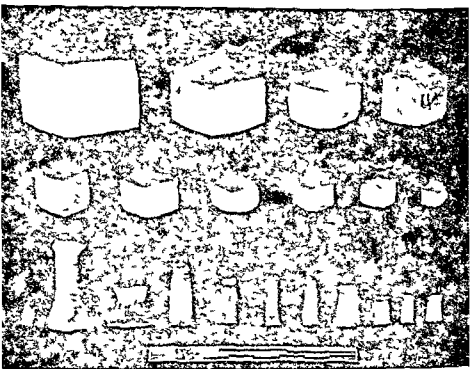
सिन्धु सभ्यता के छोटे-बडे तथा विविध आकार के बाट। (चित्र भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के सौजन्य से)

इससे यह भी सिद्ध होता है कि हडप्पा सस्कृति म 16 के अनुपात का विशेष महत्त्व था। बाद म भी माप-तौल म इस 16 का विशेष महत्त्व रहा है। जसे—16 माशक=1 कार्षापण 16 छटाक=1 सेर, 16 आने=1 रुपया इत्यादि। सिन्धु सभ्यता के तराजू भी मिले हैं। बाँटो की एकरूपता से सिद्ध होता है कि किसी केन्द्रीय सत्ता की देख रेख म इनका निर्माण होता था।

मापक के दो प्रमाण मिले है। मोहनजोदडो से शख की बनी हुई एक खडित माप-पट्टी मिली है। इस पट्टी पर 9 खडी रेखाएँ अकित हैं जो

समातर ह। गो समानर रखाओ व बीच 0 264 इच की दूरी है। एक रेखा पर एक वृत्त खींचा हुआ है, इसके बाद पाचवीं रखा पर और एक वृत्त खींचा हुआ है। अत इन दो वृत्तो के बीच की दूरी होगी 0 264 × 5 = 1 32 इच।
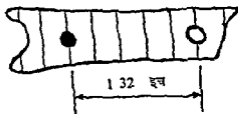
मोहनजोदडो मे प्राप्त शख की बनी हुई एक खण्डित माप पटटी।

हमारे हाथो की उँगलियाँ दस है इसलिए प्राय सभी प्राचीन सभ्यताओ मे गणना का आधार दस रहा है। मेसोपोटामिया मे दस के साथ साथ साठ के आधार स भी गणनाएँ होती थी। लेकिन लगता है कि सिन्धु सभ्यता म गणना का आधार दस ही था। उस माप-पट्टी के दो वृत्तो के बीच की दूरी 1 32 इच है तो दस गुना लम्बी माप पट्टी 13 2 इचो की रही होगी। अर्थात, सिन्धु सभ्यता के लोगो का एक फुट 13 2 इचो का होता होगा। मापन क लिए इस्तमाल होने वाला काँसे का एक खडित दण्ड भी मिला है, जिस पर रखाए खीची गई हैं।

मोहनजोदडो नगर योजना के अनुसार बना था। सडकें सीधी और चौडी हैं। पानी को बहाने क लिए सडक के किनारे इटो से ढकी हुई पक्की नालियाँ बनाई गई थी। मकान दोमजिले होते थ। मोहनजोदडो से एक विशाल स्नानागार मिला है। इन सबके निर्माण म रेखागणित का अच्छा ज्ञान होना जरूरी है। उपजाऊ खेतो के बँटवारे क लिए भी रेखागणित का ज्ञान जरूरी है।

विस्तृत कृषिकर्म के लिए महीने की अपेक्षा वर्षमान का अधिक महत्त्व होता है। खेत तयार करने और फसल बोने तथा काटने का समय मालूम करना जरूरी हो जाता है। इस प्रकार सौर-पचाग जन्म लेता है। सिन्धु सभ्यता क पुरोहित ज्योतिषी कुछ ग्रहो को पहचानते होंगे। लेकिन लिखित सामग्री के अभाव म उनके ज्योतिष ज्ञान के बारे म निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

सिन्धु सभ्यता के नगरों म सफाई की उत्तम व्यवस्था थी। कूडा कचरा फेंकने के लिए मकानों के बाहर इंटो क गड्ढे बने हुए थ जिनकी सफाई नगर-पालिका की ओर स होती होगी। अत लगता है कि चिकित्साल्य भी रहे

लोह की खोज कॉस्पियन सागर के पास के पहाडी प्रदेश म रहने वाले लोगा न की थी। चूँकि आय लोग मूलत उसी प्रदेश के आमपास रहत थे इसलिए आरम्भ मे सम्भवत उन्ही के माध्यम स उस समय क सम्य ससार को इस महान आविष्कार के बारे मे जानकारी मिली। किन्तु आरम्भ म लोहे को आसानी से प्राप्त करना सम्भव नही था।

आयभाषियो की सफलता का और एक प्रमुख कारण था—घोडे का इस्तेमाल। सिधु सभ्यता म घोडे के अस्तित्व के बारे म कोइ ठास जानकारी नही मिलती। प्राचीन मिस्र और मसोपोटामिया के लोग भी पालतू घोडे स परिचित नही थ। दूसरी ओर, ये घुमन्तू आय पालतू घोडा पर सवार होत थ और इन्ह रथ मे जोतना भी जानते थे।

इस प्रकार, ज्ञान विज्ञान की अन्य बाता म काफी पिछडे होने पर भी ये आयभाषी लोग उस समय की विकसित सभ्यताआ से दो बाता म श्रेष्ठ (आय) थे। व एक कठोर धातु (लोहे) क औजारा से परिचित थे और एक तीव्रगामी वाहन (घोडे) का कुशलता से इस्तेमाल कर सकत थ। लाहे क औजारा ने मानव के हाथो को अधिक शक्तिशाली बनाया और उत्पादन को कइ गुना बढाया। घोडे के वाहन ने मानव जीवन को द्रुतगामी बनाया। इस दृष्टि स उस जमाने के इन आविष्कारा का वही महत्त्व है जो कि हमारे समय म परमाणु शक्ति और रेलगाडी या जहाज या हवाई जहाज का है।

इस बुनियादी जानकारी की पृष्ठभूमि म अब हम भारत म पहुचे हुए आय भाषी लोगा के वज्ञानिक विकास पर विचार करेंगे। यहाँ हम यह स्मरण रखना चाहिए कि आर्यों के आगमन के पहले भारत मे एक विकसित नागरी सभ्यता—सिधु सभ्यता—का अस्तित्व था। मेल-जोल तथा आदान प्रदान स ही नई वैदिक सस्कृति तथा ज्ञान विज्ञान का विकास हुआ है।

उस जमाने के जन जीवन और ज्ञान विज्ञान के बारे म अधिकाश जानकारी हम ग्रन्था से ही मिलती है। इनमे सबसे पुराने हैं वेद। वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथववेद। इनमे ऋग्वेद सबस प्राचीन है। आय भाषी पुरोहित कवियो (ऋषियो) ने अपने देवताआ की स्तुति म समय समय पर जिन गीता (ऋचाआ) की रचना की थी, उन्ही का सग्रह करन स य वेद बने हैं। इनकी रचना 1200 ई० पू० के आसपास हुई।

वेदो के बाद ब्राह्मण-ग्रन्थ, आरण्यक, वेदाग-सूत्र तथा उपनिषदो की रचना हुई। लगभग आठ सौ साल के दीघकाल मे लिखे गए इस सारे साहित्य को वदिक साहित्य का नाम दिया जाता है। सामान्यत हम कह सकते हैं यह वदिक

साहित्य 1200 ई० पू० स 500 ई० पू० के बीच रचा गया।

यह सारा साहित्य गुरु शिष्य परम्परा म लम्बे समय तक सुरक्षित रहा। यह आज भी लगभग अपने मूल रूप म उपलब्ध है। इसी साहित्य से हम उस समय के ज्ञान विज्ञान के बारे मे जानकारी मिलती है।

भारत म पहुचे हुए आयभाषी लोगो को लिपि का ज्ञान नही था। ये आय भाषी लोग जहाँ भी गए वहा की लिपि के आधार पर इन्होंने अपनी भाषा क लिए नइ लिपि का निर्माण किया। कबीलाई जीवन के लिए लिपि की जरूरत नही होती। कबीलाइ व्यवस्था के लोग जब राजसत्ता के युग म पहुचत हैं तभी उन्ह सम्पत्ति का हिसाब रखने क लिए तथा राजाज्ञाओ को जारी करने के लिए लिपि की जरूरत पडती है।

यूनान म पहुचे हुए आयभाषियो ने सवप्रथम 1400 ई० पू० के आसपास क्रीट द्वीप की पुरानी लिपि के अक्षरों से अपनी भाषा क लिए एक लिपि बना ली थी। फिर, 1000 ई० पू० के आसपास उन्होने फिनिशियन लिपि के आधार पर एक वणमाला तयार कर ली। पश्चिमी एशिया मे पहुचे हुए आय भाषी शासको ने भी मेसोपोटामिया की कीलाक्षर लिपि को अपना लिया था।

ईरान म पहुचे हुए भारतीय आर्यों क भाई-बन्धो न कीलाक्षर लिपि के आधार पर अपनी भाषा क लिए एक लिपि का निर्माण कर लिया था। ईसा पूव छठी सदी से इस लिपि म ईरान के हखामनी सम्राटो के लख मिलन लग जात हैं।

आयभाषियो के आगमन के पहले भारत म सिन्धु सभ्यता की लिपि का अस्तित्व था ही। आयभाषी लोग जब कबीलाई प्रथा स राजप्रथा मे पहुचे, तब उन्होने लिपि का निर्माण कर लिया होगा। यह बात ईसा के आठ-नौ सौ साल पहले हुई होगी। पर आज हमे उस समय का कोई लेख नही मिलता। पहली बार ईसा पूव तीसरी सदी म हम अशोक के अभिलेख मिलते हैं। इस विकसित लिपि को आज हम ब्राह्मी लिपि के नाम से जानते हैं। बहुत सम्भव है कि अशोक के पांच छ सौ साल पहले ही सिन्धु लिपि के आधार पर ब्राह्मी लिपि का निर्माण हो चुका था।

कबीलाई प्रथा के लोगों को अपने पशुधन आदि का हिसाब रखना पडता है। इसलिए उन्हें सरल-से अक-सकेतों का ज्ञान अवश्य रहा होगा।

अब हम इस वदिक काल के विज्ञान के विविध अगों पर विचार करेंगे।

गणित

वेद विज्ञान के ग्रन्थ नहीं हैं, इसलिए उनमें आधुनिक उच्च गणित के फार्मूले या एटम बम बनाने के सूत्र खोजना निरर्थक है। हमारे दोनों हाथों की उँगलियाँ दस हैं और आरम्भ में इन्हीं उँगलियों की सहायता से गणना होती थी, इसलिए प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं में गणना का आधार दस रहा है। हमारे देश में वैदिक काल से ही गणना का आधार दस रहा है।

वैदिक लोगों का किसी परलोक में विश्वास नहीं था। वे इसी लोक को सुखी बनाना चाहते थे। इसलिए वे अपने देवताओं से याचना करते थे कि हमें अमुक मिले, हमें इतनी गायें मिलें, इत्यादि। इसी सन्दर्भ में ऋग्वेद में कुछ छोटी-बड़ी संख्याओं के उल्लेख मिलते हैं।

ऋग्वेद में दश, शत, सहस्र तथा अयुत (10 000) जैसी दशगुणोत्तर संज्ञाएँ देखने को मिलती हैं। ऋग्वेद में मिलनेवाली दशगुणोत्तर गणना की सबसे बड़ी इकाई अयुत है। वैसे ऋग्वेद में मिलनेवाली सबसे बड़ी संख्या है 60 099 (षष्टि सहस्रा नवति नव)।

शून्य सहित केवल दस अंक संकेतों पर आधारित आधुनिक अंक-पद्धति की खोज भारत में ही हुई है, पर काफी बाद में। सम्राट अशोक और गुप्त सम्राटों के लेखों में भी हमें इस दशमिक अंक पद्धति के दर्शन नहीं होते। ऋग्वेद में 'शून्य' शब्द के कहीं दर्शन नहीं होते।

यजुर्वेद और अथर्ववेद की रचना ऋग्वेद के कुछ बाद हुई। इसलिए इनमें हमें कुछ बड़ी संख्या-संज्ञाओं के दर्शन होते हैं। यजुर्वेद में दशगुणोत्तर संज्ञाओं की सूची को परार्ध (10 00 00 00 00 000) तक पहुँचा दिया गया है। यजुर्वेद में ही एक स्थान पर संख्या-संज्ञाओं को कुछ इस प्रकार दोहराया गया है कि मानो 4 का बारह तक (4 × 12) पहाड़ा सुनाया गया है।

आगे बदलती आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव में इस गणना पद्धति का विकास होना एक स्वाभाविक बात थी। इसलिए ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थों में हमें संख्याओं के अधिकाधिक उल्लेख मिलते हैं।

भाषा निरन्तर बदलती रहती है। ब्राह्मण पुरोहितों के लिए जरूरी था कि वे गुरु शिष्य परम्परा में वेदों का अध्ययन जारी रखें। लेकिन 600 ई० पू० के आसपास पहुँचते पहुँचते वेदों की भाषा काफी पुरानी पड़ गई। इसलिए वेदाध्ययन को दृष्टि में रखकर कई विषयों पर ग्रन्थ रचे गए। इन्हें वेदांग अर्थात् वेदों के अंग कहते हैं। वेदांग साहित्य सूत्र रूप में है। ये ग्रन्थ इनके रचयिताओं

के नामा से जान जाते हैं।

वेदाग 6 हैं—शिक्षा, कल्प, निरुक्त छ द, ज्योतिष और याकरण। इनम कल्पसूत्र तीन प्रकार के हैं—श्रौतसूत्र, धमसूत्र और गह्यसूत्र। श्रौतसूत्रो मे यनकम की विधिया के बारे म सूक्ष्म जानकारी दी गई है। यज्ञो के लिए वदिया बनती थी। खास यन के लिए खास आकार प्रकार की वेदिया बनती थी। यन के सुफल के लिए इन वेदियो क आकार प्रकार तथा क्षेत्रफल नियमानुसार बनने जरूरी थे। इसलिए वेदियो के निर्माण की विधियो क बारे म भी सूत्र रचे गए। ये सूत्र परिशिष्टो के रूप म श्रौतसूत्रों क अन्त म दिए गए हैं। इन्ही को शुल्बसूत्र कहते है।

शुल्ब का अथ है रस्सा या रस्सी से मापना। उस समय अनेक शुल्वसूत्रा की रचना हुई होगी। लकिन इस समय केवल सात शुल्वसूत्र ही मिलते हैं। बौधायन, आपस्तम्ब कात्यायन आदि ने इनकी रचना की है इसलिए ये सूत्रग्रथ बौधायन शुल्वसूत्र, आपस्तम्ब शुल्वसूत्र, कात्यायन शुल्वसूत्र आदि नामा से जाने जाते हैं।

इन शुल्वसूत्रा मे मापन क बारे म अनेक नियम दिए गए हैं इसलिए इनम हम उस जमाने क रखागणित नान के दशन करत हैं। कई बार एक आकार की वदी को दूसरे आकार की वेदी म बदलना होता था, लेकिन दोना के क्षेत्रफल का समान रखना होता था। शुल्वसूत्रा मे इन सबके बारे म नियम दिए गए हैं।

स्कूल के विद्यार्थी रेखागणित के पाइथेगोर के प्रमेय से परिचित होंगे। इस प्रमेय के अनुसार, समकोण त्रिभुज के कण पर आधारित वग उस त्रिभुज की शेप दो भुजाओ पर आधारित वर्गों के जोड क बराबर होता है। यूनान के महान गणितन यूक्लिड (लगभग 300 ई० पूव) की ज्यामिति म यह प्रमेय दिया हुआ है। पाइथेगोर ईसा पूव छठी सदी म हुए।

पाइथेगोर के नाम से प्रसिद्ध यह प्रमेय शुल्वसूत्रो म भी मिलता है। बौधायन शुल्वसूत्र म इसके लिए सूत्र है दीघचतुरश्रस्याक्ष्णयारज्जु पाश्वमानी तिर्य्यङ्‌मानी च यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभय करोति। यह सूत्र अ य शुल्वसूत्रा मे भी मिलता है। इसका भावाथ वही है जा कि पाइथेगोर के प्रमेय का है।

जानकारी मिलती है कि पाइथेगार ने मिस्र तथा पश्चिम एशिया के देशा की यात्रा की थी। केवल इसीलिए, शुल्वसूत्रा को अधिक प्राचीन घोषित करके हम यह नही कह सकत कि पाइथगोर का इस प्रमेय की जानकारी भारत स मिली है। इस प्रमेय का खोजने का श्रेय केवल भारत और यूनान को ही नही

है। इस बात के ठोस सबूत मिलते हैं कि प्राचीन बेबीलोन तथा चीन के गणितज्ञों को भी इस प्रमेय की जानकारी थी।

पाइथेगोर का प्रमेय प्राथमिक रेखागणित का एक अद्भुत एवं उपयोगी प्रमेय है। इस प्रमेय के अनुसार समकोण त्रिभुज के कर्ण की लम्बाई यदि क हो और शेष दो भुजाओं की लम्बाई क्रमशः अ तथा ब हो, तो तीनों भुजाओं के परस्पर सम्बन्ध के बारे में हमें सूत्र मिलता है क² = अ² + ब²। इस सूत्र की सहायता से त्रिभुज की दो भुजाएँ ज्ञात होने पर हम तीसरी भुजा मालूम कर सकते हैं। जैसे यदि अ=3 तथा ब=4 तो क=5।

शुल्वसूत्रों में इस प्रकार के अनेक सम्बन्ध-सूत्र दिए गए हैं। उदाहरणार्थ,

$$9^2+12^2=15^2$$
$$8^2+15^2=17^2,$$
$$15^2+36^2=39^2 \text{ इत्यादि।}$$

अब एक ऐसे समकोण त्रिभुज पर विचार कीजिए जिसकी दो छोटी भुजाएँ एक एक इकाई लम्बाई की हैं और कर्ण की लम्बाई मालूम करनी है। तब क² $=1^2+1^2$ जहाँ क उस त्रिभुज के कर्ण की लम्बाई है।

या क² $=2$

या, क $=\sqrt{2}$ (2 का वर्गमूल)।

अर्थात् उस त्रिभुज के कर्ण की लम्बाई होगी $\sqrt{2}$। लेकिन यह संख्या क्या है? यह एक पूर्णांक संख्या नहीं है। यह एक भिन्न भी नहीं है। दरअसल, यह एक ऐसी संख्या है जिसे हम अन्य प्रकार से ठीक-ठीक व्यक्त कर ही नहीं सकते। अन्य शब्दों में $\sqrt{2}$ एक ऐसी लम्बाई है जिसे हम स्केल से ठीक ठीक माप नहीं सकते। ऐसी संख्याओं को हम अपरिमेय संख्याएँ कहते हैं। ऐसी एक दो नहीं अनन्त संख्याएँ हैं।

आरम्भ में **पाइथेगोर** का मत था कि यह विश्व संख्यामय है अर्थात् विश्व की हर वस्तु को ठीक ठीक मापा जा सकता है यानी इन्हें संख्याओं में व्यक्त किया जा सकता है। लेकिन बाद में उन्हें या उनके किसी शिष्य को पता चला कि $\sqrt{2}$ जैसी अनेक लम्बाइयाँ हैं जिन्हें ठीक ठीक मापा नहीं जा सकता। कहते हैं कि पाइथेगोर के शिष्यों ने इस खोज को कई साल तक गुप्त रखा था।

शुल्वसूत्रकारों ने भी जान लिया था कि $\sqrt{2}$ जैसी संख्याएँ अपरिमेय हैं। इसलिए उन्होंने ऐसी संख्याओं के सन्निकट मान मालूम करने के लिए सूत्र दिए हैं। उदाहरणार्थ, शुल्वसूत्रों में $\sqrt{2}$ को द्वि-करणी कहा गया है और इसके

मान के लिए जो सूत्र दिया गया है, उसके अनुसार,

$$\sqrt{2}=1+\frac{1}{3}+\frac{1}{3\cdot4}-\frac{1}{3\cdot4\cdot34}$$

$$=1.4142156$$

आधुनिक गणना के अनुसार $\sqrt{2}$ का मान होगा 1.414213 ।

शुल्वसूत्रों में आकृतियों की रचना और उनके आयतन तथा क्षेत्रफल मालूम करने के अनेक नियम दिए गए हैं। फिर भी शुल्वसूत्रों की तुलना हम यूक्लिड के ज्यामिति के ग्रन्थ के साथ नहीं कर सकते। दोनों में बडा अन्तर है। शुल्वसूत्रों में नियम तो दिए गए हैं, किन्तु तार्किक विधियों से इन नियमों को किस प्रकार प्राप्त किया जाता है इसका कोई जिक्र नही है। शुल्वसूत्रों का रेखागणित ज्ञान उस समय के धर्म-कर्म (यज्ञकर्म) का अभिन्न अंग है।

दूसरी ओर यूक्लिड की ज्यामिति के 'मूलतत्त्व' पूर्णत तार्किक ढाँचे पर आधारित हैं। यूक्लिड ने अपने समय (300 ई० पूर्व) तक ज्ञात सारे ज्यामितीय ज्ञान को धार्मिक रहस्यवाद से जुदा करके तर्कशास्त्र की नींव पर खडा किया। यूक्लिड की विज्ञान को यही सबसे बडी देन है। अपनी इसी विशेषता के कारण यूक्लिड की ज्यामिति आज भी लगभग अपने मूल ढाँचे में ससार के सभी स्कूलों में पढाई जाती है। यूक्लिड के ग्रन्थ को न केवल रेखागणित का बल्कि तर्कशास्त्र का भी ग्रन्थ मानना चाहिए। तर्कशास्त्र और गणित का चोली-दामन का सम्बन्ध है।

विज्ञान के इतिहास में शुल्वसूत्रों का महत्त्व है। इसलिए महत्त्व है कि इनकी रचना यूक्लिड के कुछ पहले हो चुकी थी। लेकिन भारत में यूक्लिड की तरह ऐसा कोई विद्वान नही हुआ जो इन शुल्वसूत्रों के रेखागणित ज्ञान को तार्किक नियमों में बाँधकर इन्हें शुद्ध शुल्व विज्ञान का रूप दे सके।

यूक्लिड की ज्यामिति की पुस्तक किसी धर्म विशेष की पोथी नही थी, इस लिए यह सबके लिए सुलभ थी। बाद मे इस ग्रन्थ का ससार की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हुआ। विपरीत, शुल्वसूत्रों का ज्ञान ब्राह्मणों पुरोहितो की गुरु शिष्य परम्परा में ही सीमित रहा। इसलिए हमारे देश में रेखागणित का तेजी से विकास न हो सका। बहुत बाद में जाकर ही भारतीय गणित अपने को धर्म-कर्म से जुदा कर पाया।

ज्योतिष

आज के खगोलविद प्राप्त जानकारी के आधार पर विश्व की रचना एव

उत्पत्ति के बारे म परिकल्पनाएँ प्रस्तुत करत हैं। पुराने जमाने क पडित पुरोहितो ने भी विश्व की रचना तथा उत्पत्ति क बारे म तरह-तरह की कल्पनाएँ की थी।

ऋग्वेद के कविया न विश्व को दो प्रमुख भागो म बाटा है—द्युलोक और पृथ्वी (द्यावापृथिवी)। कही कही द्युलोक और पृथ्वी के बीच म अतरिक्ष की स्थापना करके तीन लोको की कल्पना की गई है। परन्तु वदो म कही पर भी स्वग, मृत्यु (पृथ्वी) तथा पाताल (नरक) का जिक्र नही है। यह बाद की कल्पना है।

ऋग्वेद के कई कविया के मतानुसार विश्वोत्पत्ति के पहले कुछ नहीं था। फिर दिशाएँ, देवता, वायु जल पृथ्वी आदि की उत्पत्ति हुई। कुछ कविया न विश्व की उत्पत्ति कुछ भिन्न क्रम से भी बतलाई है। लेकिन कुछ कवि स्पष्ट शब्दो मे कहते हैं कि विश्वोत्पत्ति के कारण को कोई नही जानता। वे चुनौती देते हुए कहते हैं—यदि कोई जानता है तो यहाँ आकर बताए (इह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत)। आगे तैत्तिरीय-ब्राह्मण म कहा गया है कि देवता भी बाद म हुए फिर कौन जानता है कि यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुई ?

आरम्भ म प्राय सभी प्राचीन सभ्यताओ मे चन्द्र की घटती-बढती कलाओ के आधार पर काल-गणना की गई है। ऋग्वेद म चन्द्र के लिए मास शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद म वर्ष' शब्द नही मिलता लेकिन वष के अथ म सवत्सर हेमन्त, शरद आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है। वेदो म युग शब्द आया है जो बाद मे पाच साल के बराबर माना गया। वेदो म कृत त्रेता द्वापर और कलि युगो का कोई उल्लेख नही है। वेदो म कृत, त्रेता आदि शब्द हैं, पर ये कालवाचक नही हैं। ऋग्वदिक लोगो को जुआ खेलने का बडा शौक था। जुए मे कभी कभी वे अपनी पत्नी को भी हार जाते थे। जुए के पासे के सदभ म ही ऋग्वेद म इन कृत, त्रेता आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है।

वेदो म एक दिन रात (अहोरात्र) का द्योतक तिथि' शब्द नही है। उनमे *सप्ताह के वतमान सात वारो का भी उल्लख नही है। आग अनेक सदियो तक* भारतीय साहित्य म हम इन सात वारो के नाम नही मिलत। न केवल वदिक वाङमय म बल्कि स्मृतियो और महाभारत म भी सात वारो के नाम नही मिलत। पहली बार 484 ई० क एक लेख म हम इन सात वारो के नाम देखन को मिलत हैं।

वदो की काल-गणना के अनुसार एक सवत्सर म 360 दिन और 12 मास होते थे। ब्राह्मण ग्रन्थो के अनुसार एक अहोरात्र मे 30 मुहूत होन थ। इस

प्रकार एक मुहूर्त 48 मिनट के बराबर होता था और एक वर्ष म 10,800 मुहूर्त होते थे। शतपथ-ब्राह्मण म दी गई आग की सूक्ष्म काल गणना इस प्रकार है

1 मुहूर्त =15 क्षिप्र
1 क्षिप्र =15 एतर्हि
1 एतर्हि =15 इदानि
1 इदानि =15 प्राण
1 प्राण =15 निमेष (पलक)

इस काल-गणना के अनुसार, एक मुहूर्त (48 मिनट या 2880 सेकण्ड) म 7,59 375 निमेष होंगे। इस प्रकार, एक सेकण्ड म करीब 263 निमेष होते हैं। समझ म नहीं आता कि एक सेकण्ड म 263 बार पलकें झपकना कसे सम्भव था और इस सूक्ष्म काल गणना की क्या उपयोगिता थी। आज के वैज्ञानिक एक सेकण्ड के अरबवें-खरबवें हिस्से का हिसाब रखने में समर्थ हैं। परमाणु के भीतर रजोनेंस' नामक जो नये परमाणु कण खोजे गए हैं वे एक सेकण्ड के अरबवें-खरबवें हिस्से में अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं। अब एक सेकण्ड में हजारों चित्र उतारना भी सम्भव है।

वल्कि आर्यों को सूर्य की गति का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने बारह सूर्यो (द्वादशादित्य) की कल्पना की थी। हर महीने सूर्योदय की स्थिति म अन्तर पडता है इसीलिए उन्होंने 12 सूर्यों की कल्पना की होगी। इसी प्रकार से उन्हें दक्षिणायन और उत्तरायण का भी ज्ञान हो गया था।

वदिक आर्य समझ गए थे कि सूर्य के कारण ही पृथ्वी तथा इसका जीव-जगत टिका हुआ है। वे यह भी जानते थे कि सूर्य की गतियों से वर्षमान तथा ऋतुओं का समय निर्धारित होता है। पर उन्हें चन्द्र सूर्य तथा नक्षत्रों की सही दूरियों का ज्ञान नहीं था। तैत्तिरीय संहिता म एक स्थान पर कहा गया है कि चन्द्रमा सूर्य के ऊपर है। दरअसल आकाश के पिंडों की सही दूरियों के बारे में ठोस जानकारी हम पिछले दो सौ साल म ही मिली है।

वदिक आर्य जानते थे कि चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से चमकता है। वेदों मे कई स्थानों पर उल्लेख है कि सूर्य के रथ म सात घोडे जुते हुए हैं। ये सात घोडे सम्भवत सात रंगों के द्योतक हैं। इन्द्रधनुष के सात रंगों के आधार पर उन्होंने सूर्य के सात घोडों या रंगों की कल्पना की होगी।

ऋग्वेद म जितने देवताओं का उल्लेख है उनम सूर्य से सम्बन्धित देवी-देवताओं की संख्या सबसे अधिक है। भारतीय आर्यों का विश्वास था कि सूर्य

देवता घोडे जुते हुए रथ पर आरूढ होकर आकाश की यात्रा करते हैं। उधर यूनानियो ने भी आकाशगामी रथारूढ सूर्य की कल्पना की थी। इस समानता का कारण स्पष्ट है। मूल आर्यभाषियो ने ही रथ की खोज की थी और घोडा उनका मुख्य वाहन था।

ऋग्वेद में 27 नक्षत्र मडलो तथा 12 राशियो के बारे मे कोई जानकारी नही मिलती। लेकिन वदिक आर्यों को आकाश के कुछ प्रमुख नक्षत्रो (तारो) का अच्छा ज्ञान था। ऋग्वेद मे 'ग्रह' शब्द नही मिलता। शतपथ-ब्राह्मण में पहली बार सूर्य को ग्रह कहा गया है। लेकिन ऋग्वदिक आर्यों ने मगल, शुक्र शनि तथा बृहस्पति को अवश्य पहचान लिया था। चूकि राहु और केतु दरअसल ग्रह नहीं हैं, इसलिए ऋग्वद में इनका कोई उल्लेख नही है। लेकिन वदिक आर्य ग्रहण, उल्कापात तथा धूमकेतुओ की घटनाओ से परिचित थे।

जानकारी मिलती है कि उस जमाने के कुछ लोग आकाश की घटनाओ के विशेषज्ञ थे। वदिक साहित्य में गणक, नक्षत्रदर्श, दवज्ञ आदि शब्द मिलते हैं। अत लगता है कि फलित ज्योतिष का धधा शुरु हो गया था। लेकिन यह भी जानकारी मिलती है कि पुरुषमेध यज्ञ में ज्योतिषियो की भी बलि चढाइ जाती थी।

वेदाग साहित्य की जानकारी हम दे चुके हैं। छ वेदागो में ज्योतिष भी एक है। वेदाग-ज्योतिष पुस्तक आज भी मिलती है। महात्मा लगध इस वेदाग ज्योतिष के रचयिता माने जाते हैं। वेदाग ज्योतिष में लगभग 50 श्लोक मिलते हैं। कई श्लोको का अर्थ स्पष्ट नही है। यज्ञकर्म के लिए सही समय का बडा महत्व था इसलिए काल-गणना के उद्देश्य से वेदाग-ज्योतिष की रचना हुई थी। इसका विषय पचाग है।

वेदाग ज्योतिष में पहली बार हम आरभिक गणित-ज्योतिष के दर्शन होते हैं। वेदाग ज्योतिष के ही एक श्लोक के अनुसार, उस जमाने में गणित ज्योतिष को वेदागो में सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त था। वेदाग-ज्योतिष में काल-गणना की गणितीय विधियाँ दी गइ हैं।

वेदाग ज्योतिष में साल के लिए सम्वत्सर, वर्ष तथा अब्द शब्दो का प्रयोग हुआ है और एक युग पाच वर्षों का माना गया है। एक सौरवर्ष में 366 दिन माने गए है। इस प्रकार एक युग मे 1830 सावन दिन होते हैं।

वेदाग-ज्योतिष में हम 27 नक्षत्रो के तथा इनसे सम्बधित देवताओ के नाम मिलते हैं और चद्र की गति का इन नक्षत्रो के साथ सम्बध जोडा गया है। इस प्रकार चान्द्र पचाग को सौर पचाग के साथ जोडा गया।

लेकिन वेदाग-ज्योतिष मे 12 राशिया का कोई उल्लेख नहीं है।

भारतीय साहित्य म वेदाग-ज्योतिष इस विषय का पहला स्वतन्त्र ग्रथ है। इसके बाद रचे गए ग्रथा म, जसे महाभारत और स्मृतिग्रयों मे, ज्योतिषीय घटनाओं के बारे मे यत्र-तत्र थोडी-बहुत जानकारी मिल जाती है। इनके बाद ज्योतिष के कुछ सिद्धान्त ग्रथा की रचना हुई थी। जस सूय सिद्धान्त पितामह सिद्धान्त आदि। लेकिन य ग्रथ आज नही मिलत। छठी सदी के महान ज्योतिषी वराहमिहिर न अपने 'पचसिद्धान्तिका ग्रथ म इन पुरान ज्योतिष सिद्धान्ता के बारे म जानकारी दी है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

वदाग ज्योतिष और शुल्वसूत्रा के बाद लम्बे समय तक हमें ज्यातिष तथा गणित के बारे म कोई स्वतन्त्र ग्रथ नही मिलता। फिर 499 ई० म लिखी गई आयभट की पुस्तक मिलती है, जो गणित-ज्योतिष की एक वज्ञानिक पुस्तक है। ठोस जानकारी न मिलने पर भी हम जानत हैं कि वेदाग-साहित्य और आयभट के बीच क काल म ज्योतिष तथा गणित का काफी विकास हुआ। इस काल म कई ज्योतिष सिद्धान्त लिखे गए। भारतीय ज्योतिषियो को यूनानी ज्योतिष की जानकारी मिली। इसी काल म शून्य पर आधारित स्थानमान अक-पद्धति का आविष्कार हुआ। यह सब जानकारी हम आगे देंगे।

चिकित्सा

आर्यों के चिकित्सा ज्ञान के बारे मे ऋग्वेद और अथववद मे हम थोडी बहुत जानकारी मिलती है। कहते हैं कि ऋग्वद की रचना सबसे पहल और अथववद की सबसे बाद मे हुई। ऋग्वद की रचना उस समय हुई जब आय भाषी लोग भारत के मूल निवासियों के साथ अभी पूरी तरह धुल मिल नहा गए थे। लेकिन अथववेद की रचना के समय तक आर्यों का और यहा के मूल निवासिया का काफी मिश्रण हो चुका था। इसीलिए अथववद म हम उस जमाने की चिकित्सा-पद्धति के बारे मे अधिक जानकारी मिलती है।

वद्य का पेशा बहुत पुराना है। ऋग्वेद में भेषज शब्द मिलता है। वरुण रुद्र तथा अश्विनी कुमारा का भिषक (वद्य) कहा गया है। वेदों म अश्विनी कुमारा के चमत्कारा के अनेक उल्लेख मिलत हैं। जैसे उन्होंने दधीच ऋषि के सिर को हटाकर उसके स्थान पर घोडे का सिर जोड दिया और फिर पहला सिर पूववत जोड दिया विश्पला की कटी हुई टाग क स्थान पर धातु की टाग जोड दी, बूढे च्यवन ऋषि को जवान बना दिया इत्यादि। अश्विनी कुमार देवताओं के वद्य माने गए हैं इसलिए उनके बार में यह चमत्कारिक वणन

स्वाभाविक है।

दरअसल, उस समय की चिकित्सा-पद्धति अभी ओझाई की अवस्था म ही थी। उस समय क वैद्या को गुणकारी जडी बूटिया का अच्छा ज्ञान रहा होगा, परन्तु जादू-टोन को ही अधिक महत्व दिया जाता था। वद्य का पेशा मुख्यत पुरोहित (अथवन्) के हाथ म था, इसीलिए अथववेद मे चिकित्सा क बारे म अधिक जानकारी मिलती है।

वेदा म अनेक रोगो के उल्लेख है। जसे, तक्मन् (ज्वर) आस्राव (दस्त), यक्ष्मा (तपेदिक) जलोदर, क्षत्रिय (आनुवशिक राग), कोढ इत्यादि। य राग आम जनता को तो होत ही थे ऋषियो और उनके देवताओं का भी होते थे। जानकारी मिलती है कि ब्रह्मा सावित्रण (नासूर) स वरुण जलोदर से और चन्द्रमा राजयक्ष्मा (तपदिक) म पीडित थे।

अथववद म पिशाच राक्षस आदि को रोगा का जनक माना गया है। इसलिए राग निवारण के लिए औषधिया की अपेक्षा झाड फूक को अधिक महत्व दिया गया है। लेकिन वदिक पुरोहित-वद्यो को गुणकारी वनस्पति का अच्छा ज्ञान था। अथववेद म धमनी और सिरा शब्द भी आए हैं। यज्ञा में पशुआ की बलि दी जाती थी इसलिए उन्ह शरीर क भीतरी अवयवो का भी कुछ ज्ञान था।

जिस प्रकार गणित ज्योतिष का विकास वदाग-ज्योतिष के समय से शुरू हुआ उसी प्रकार आयुर्वेद का स्वतन्त्र विकास कुछ समय बाद हुआ। आयुर्वेद क बहुमुखी विकास की जानकारी हमें चरक-सहिता तथा सुश्रुत-सहिता ग्र थो में मिलती है। इन ग्र था में आयुर्वेद क ज्ञान का सकलन काफी बाद म हुआ। इनकी जानकारी हम एक स्वतन्त्र प्रकरण में आगे देंगे।

धातुकम तथा तकनीक

हमने पहल बताया है कि आयभाषियो को लोहे का ज्ञान था। आयभाषियो से हमारा मतलब पश्चिमी एशिया क उन लोगा से भी है जो भारतीय आयभाषा स मिलती-जुलती भाषा बोलते थे। पश्चिमी एशिया क हित्ती शासक इसा पूव चौन्हवी सदी में लोह के औजारा से परिचित थ।

ऋग्वद म तीन धातुआ क बारे में जानकारी मिलती है—हिरण्य (सोना) रजत (चाँदी) और अयस। अतिम शब्द अयस क अथ के बार में विद्वाना में काफी मतभेद है। अयस शब्द के तीन अथ लगाये गए है—तावा लोहा और धातु।

हम बता चुके हैं कि सिन्धु सभ्यता के लोग ताव और पत्थर के औजारो का इस्तमाल करत थे उन्हें लोहे का ज्ञान नही था। सिन्धु सभ्यता के ताँबे के हथियार भी मिले हैं। ईसा पूव करीब एक हजार साल पहले के भी ताव के औजार जमीन के अन्दर से मिले हैं किन्तु उतने पुराने लोहे के औजार भारत से अभी नही मिले हैं। भारत में कुछ स्थानो स मिले हुए लोहे के औजार अधिक स अधिक ईसा पूव सातवी शताब्दी के है। इसलिए कुछ विद्वानो का मत है कि भारत के आयभाषी लोग लोहे क औजार बनाना नही जानत थ और अयस शब्द का अथ लोहा नही हो सकता।

लेकिन वेदो की गहराई स छानबीन करने पर स्पष्ट होता है कि अयस काई कठोर धातु होनी चाहिए। इस अयस धातु से वे असि, क्षुर परशु आदि तज धारवाले औजार बनात थे। इस धातु के औजार बनाने वाले को ऋग्वद में कमकार या कर्मार कहा गया है।

जानकारी मिलती है कि आय लोग यज्ञ में जिन पशुओ की बलि देत थ उनके सिर किसी कठोर हथियार से एक ही झटके में धड से अलग कर देते थे। उस समय के घने जगलो को भी कठोर धातु के औजारो के बिना साफ करना सम्भव नही था। अत सब बातो पर विचार करने से यही लगता है कि अयस का अथ लोहा ही है। आरम्भ म लोहे को बडी कठिनाइ से ही प्राप्त किया जाता होगा।

इस अयस शब्द के बार मे भले ही वाद विवाद हो लेकिन बाद के वदिक साहित्य म लोहे के बारे म स्पष्ट जानकारी मिलती है। बाद म दो प्रकार क अयस के बारे म जानकारी मिलती है—लोहितायस या लोहायस और कृष्णायस। यहा लोहितायस शब्द का अथ है ताँबा, क्योंकि लोहित' का अथ होता है—ताँबे के रग जसा। कृष्णायस का अथ है काली धातु, अर्थात लोहा। लेकिन हमारा आज का 'लोहा शब्द 'लोहित स ही बना है।

सक्षेप म सब बातो पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि नवागत आय लोग लोहे क औजारो से परिचित थे। वदिक काल क साथ भारत म लोहयुग की शुरुआत होती है। आरम्भ म आर्यों का निवास सप्तसिन्धु के प्रदेश (पजाब) म था। बाद म लोहे की कच्ची धातु की तलाश म आर्यों की कई टोलिया न पहले मिर्जापुर की पहाडियो तक और बाद म राजगृह (बिहार) तक दौड लगायी थी। उस समय गगा-यमुना के दोआब मे घने जगल थे। लोहे के औजारो क बिना इन घने जगलो का साफ करना सभव नही था।

वदिक आर्यों की दूसरी बडी देन है—घोडा से जुतने वाले रथ। वेदा म अश्व, रथ तथा रथकार के अनेक उल्लेख मिल्ते हैं। वदिक समाज म रथकार (बढई) को सम्मान की दृष्टि स देखा जाता था। बढ़ई के काम की तुलना वेदा की ऋचाएँ रचने के काम स की गई है। दरअसल आरभिक वदिक समाज अभी वर्णो म नहा बटा था। जानकारी मिलती है कि एक ही परिवार के कई व्यक्ति भिन भिन व्यवसायो को अपनाते थे।
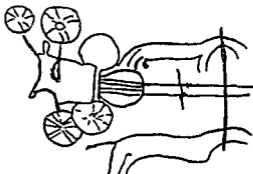
बायीं ओर का चित्र मिर्जापुर जिले की एक पहाडी गुफा मे मिला है। इसमे रथारोही व्यक्ति को चक्र फेंक्ते हुए दर्शाया गया है।

दायीं ओर ईरान के हखामनी सम्राट दारयवहु (डेरियस 522 486 ई० पू०) की मुद्रा। इसमे अश्वरथारोही सम्राट को सिंह का शिकार करते हुए दर्शाया गया है।

भारतीय तथा ईरानी आर्यों के अश्वरथ।

वदिक काल के रथ का कोइ नमूना नही मिलता। उस समय का कोई प्राचीन शिल्प भी नही मिलता लकडी के बने हुए रथ लम्बे समय तक टिक नही सकते। बुद्धगया के एक प्राचीन शिल्प म चार घोडा स जुते हुए रथारूढ सूय का शिल्प मिलता है, लेकिन वह ईसवी सन् के आरभ-काल का है। मिर्जापुर की पहाडियो मे चक्रधारी एक रथारूढ योद्धा का चित्र मिलता है, जो सम्भवत ईसा पूव आठवी सदी का है। लेकिन पश्चिमी एशिया के देशो से घोडे जुत हुए

रथा के अनक शिल्प मिलते हैं। भारतीय आर्यों के रथ भी लगभग वस ही रह हांगे।

वदिक काल क आर्यों ने अभी नगर नही बसाए थ। वे ग्रामवासी ही थ। खेती करत थ। व मुख्यत पशुपालक कृषक थ। लेकिन आगे की कुछ सदिया म ही वे नगरा की स्थापना करते हैं और राजसत्ता के युग म पहुच जात हैं।

आयुर्वेद का विकास

'आयुर्वेद शब्द आयुष' तथा वेद शब्दो के मेल से बना है। आयु का अर्थ है जीवन और वेद का अर्थ है जानना। अत आयुर्वेद शब्द का अर्थ हुआ—जीवन सम्बन्धी ज्ञान या दीर्घायु प्राप्त करने का ज्ञान।

पहले हम बता चुके हैं कि सर्वप्रथम अथर्ववेद म चिकित्सा के बारे म थोडी बहुत जानकारी मिलती है परन्तु यह चिकित्सा अभी ओझाई के स्तर की ही थी। पुरोहित (अथर्वन्) उस जमाने के वैद्य थे। औषधियो की अपेक्षा झाड फूक को अधिक महत्त्व दिया जाता था।

परन्तु अथर्ववेद से यह भी जानकारी मिलती है कि उस जमाने म औषधियो स इलाज करने वाले भी बहुत से वद्य थे। इन्ही वद्यो ने आग जाकर चिकित्सा ज्ञान को काफी हद तक धर्म कर्म से जुदा करके आयुर्वेद की स्थापना की।

लेकिन उस जमाने मे ज्ञान विज्ञान के किसी भी अग को वेदाध्ययन स पूरी तरह जुदा करना सम्भव नही था। हमने देखा है कि आरम्भ म वेदागो के रूप मे रेखागणित तथा ज्योतिष का विकास वेदाध्ययन के अन्तर्गत ही हुआ है। आयुर्वेद के उदगम को भी वेदो के साथ जोडा जाता है। आयुर्वेद को कभी कभी पाचवाँ वेद और कभी-कभी अथर्ववेद का उपाग या ऋग्वेद का उपवेद माना जाता है।

लेकिन वस्तुस्थिति कुछ भिन्न है। आयुर्वेद के चरक-सहिता सुश्रुत सहिता जस ग्रन्थो के अध्ययन से पता चलता है कि चिकित्सा ज्ञान ने प्राचीन काल म ही धर्म कर्म से अपने को काफी हद तक अलग कर लिया था। इन सहिताओ म जादू टोने या झाड फूक के उल्लेख बहुत कम हैं। ये ग्रथ मुख्यत वज्ञानिक पद्धति के ग्रथ हैं।

फिर भी चिकित्सा ज्ञान को देवताओ तथा दवी पुरुषो के साथ जोडना जरूरी था इसलिए इन सहिताओ म आयुर्वेद के विकास की परम्पराएँ दी गई हैं, जिनकी चर्चा हम आग करेंगे। यहाँ सबसे पहले हम यह देखेंगे कि

आज आयुर्वेद का कौन सी साहित्य उपलब्ध है।

आयुर्वेद का साहित्य

सबसे प्राचीन एवं सुव्यवस्थित ग्रन्थ हैं चरक-संहिता तथा सुश्रुत संहिता। संग्रह या संकलन को ही संहिता कहते हैं। अतः स्पष्ट है कि इन ग्रंथों में परम्परागत चिकित्सा ज्ञान का संकलन हुआ है।

स्वयं चरक ने चरक संहिता की रचना नहीं की है। चरक-संहिता के प्रत्येक अध्याय की शुरुआत में लिखा हुआ है इति ह स्माह भगवानात्रेय, अर्थात्, भगवान आत्रेय ने ऐसा कहा। इसी प्रकार प्रत्येक अध्याय के अन्त में उल्लेख है इत्यग्निवेशकृते तन्त्रे चरक प्रतिसंस्कृते, अर्थात इस तन्त्र (ग्रंथ) की रचना अग्निवेश ने की और चरक ने इसको प्रतिसंस्कृत किया। प्रतिसंस्कृत का अर्थ होता है—नई जानकारी के अनुसार घटा बढ़ाकर शुद्ध करना।

अतः स्पष्ट है कि चरक-संहिता के निर्माता स्वयं चरक नहीं हैं। चरक संहिता में आयुर्वेद ज्ञान की शुरुआत ब्रह्मा से मानी गई है। ब्रह्मा से यह ज्ञान प्रजापति को मिला, प्रजापति से अश्विनी कुमारों को और अश्विनी कुमारों से इन्द्र को।

आगे कहा गया है कि भरद्वाज ऋषि ने इन्द्र से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। भरद्वाज के शिष्य थे आत्रेय-पुनर्वसु। आत्रेय-पुनर्वसु ने अपने छः शिष्यों को आयुर्वेद का उपदेश दिया। ये छः शिष्य हैं—अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि।

फिर इन शिष्यों ने आयुर्वेद के बारे में अपने-अपने तन्त्रों (ग्रन्थों) की रचना की। जैसे अग्निवेश ने अग्निवेश-तन्त्र की रचना की। आज मूल अग्निवेश-तन्त्र नहीं मिलता। लेकिन चरक ने सम्भवतः इसी तन्त्र को शुद्ध किया है। यही है चरक-संहिता।

चरक-संहिता आठ स्थानों अथवा खण्डों में विभाजित है। इनमें से छठे स्थान (चिकित्सास्थान) के 17 अध्याय तथा अन्तिम दो स्थान (कल्पस्थान तथा सिद्धिस्थान) दृढ़बल नामक वैद्याचार्य ने लिखे हैं। दृढ़बल सम्भवतः ईसा की नवीं सदी में हुए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चरक-संहिता एक व्यक्ति की या एक समय की रचना नहीं है। यही हाल सुश्रुत-संहिता का है। सुश्रुत-संहिता मुख्यतः शल्य चिकित्सा (सर्जरी) का ग्रन्थ है। इस ग्रंथ के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में कथन है यथोवाच भगवान धन्वन्तरि अर्थात जैसा कि भगवान धन्वतरि ने

कहा। धन्वन्तरि से प्राप्त ज्ञान का सुश्रुत ने संकलन किया, इसीलिए सुश्रुत संहिता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में सुश्रुत के नाम का उल्लेख है।

ईसा की बारहवीं सदी में डल्हणाचार्य ने सुश्रुत संहिता पर टीका लिखी थी। उसमें डल्हण जानकारी देते हैं कि नागार्जुन ने सुश्रुत संहिता को प्रतिसंस्कृत किया था। अतः वर्तमान चरक संहिता के निर्माण में जो स्थान चरक का है वही स्थान सुश्रुत-संहिता के निर्माण में नागार्जुन का है। सुश्रुत संहिता में भी आयुर्वेद की परम्परा दी गई है। ब्रह्मा से इन्द्र तक यह परम्परा चरक संहिता जैसी ही है। लेकिन आगे सुश्रुत-संहिता के आयुर्वेद ज्ञान के व्याख्याता धन्वन्तरि हैं और श्रोता है सुश्रुत आदि उनके शिष्य। काशीराज दिवोदास को धन्वन्तरि का अवतार माना जाता है। इस प्रकार इन दोनों संहिताओं की आयुर्वेद-परम्परा को हम निम्न तालिका से व्यक्त कर सकते हैं
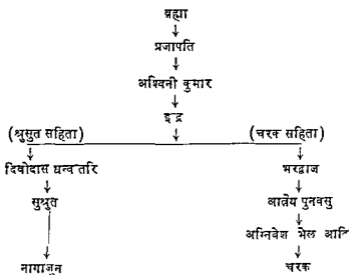
प्राचीन काल में हमारे देश में और अन्य देशों में भी हर विद्या की शुरुआत किसी न किसी देवता से मानने की परम्परा रही है। इसलिए इन्द्र तक की उपर्युक्त आयुर्वेद-परम्परा निश्चय ही काल्पनिक है। आरम्भिक वैदिक साहित्य में धन्वन्तरि का कोई उल्लेख नहीं है। धन्वन्तरि से सम्बन्धित कथाएँ पौराणिक हैं कालान्तर की हैं।

दिवोदास और भरद्वाज के नाम वेदों में मिलते हैं, कुछ स्थानों पर साथ साथ। अतः लगता है कि मूल परम्परा एक ही है, सिर्फ नामों में भेद किया गया है। लेकिन भरद्वाज और आत्रेय (अत्रि के वंशज) अनेक हुए हैं। इसलिए भरद्वाज या आत्रेय नामक किसी व्यक्ति का आयुर्वेद परम्परा के साथ जोड़ने में अनेक कठिनाइयां हैं। इनके बारे में हम कोई ऐतिहासिक जानकारी नहीं मिलती।

अग्निवेश, सुश्रुत और चरक के बारे में भी हमें कोई ऐतिहासिक जानकारी नहीं मिलती। चीनी बौद्धग्रंथों में चरक नामक वैद्य का उल्लेख है। जानकारी मिलती है कि चरक सम्राट कणिष्क के राजवैद्य थे। कणिष्क का समय अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। सामान्यतः कणिष्क का समय ईसा की पहली से तीसरी सदी तक माना जाता है। बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन का भी लगभग यही समय है।

तात्पर्य यह कि, चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता एक निश्चित काल की रचनाएं नहीं हैं और जिन आयुर्वेदाचार्यों ने इनकी रचना में योग दिया है उनके बारे में हमें ठोस ऐतिहासिक जानकारी नहीं मिलती। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अपने वर्तमान रूप में ये संहिताएं ईसा से एक दो सदी पहले या एक दो सदी बाद में अस्तित्व में आ गई थीं। चरक संहिता कुछ पहले की रचना है सुश्रुत संहिता कुछ बाद की।

इन ग्रंथों के आयुर्वेद ज्ञान की चर्चा हम आगे करेंगे। इन संहिताओं के अलावा भेल-संहिता तथा काश्यप-संहिता भी मिलती हैं। ये खण्डित ग्रंथ हैं।

बौद्ध साहित्य में जीवक नाम के चिकित्सक के बारे में जानकारी मिलती है। जीवक का जन्म राजगृह में हुआ था परन्तु आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करने वे तक्षशिला (गांधार देश) गए थे। राजगृह लौटकर उन्होंने राजा बिंबिसार तथा गौतम बुद्ध का इलाज किया था। अतः यह निश्चित है कि जीवक 500 ई० पू० के आसपास हुए। जीवक का कोई ग्रंथ नहीं मिलता।

भारतीय चिकित्सा-पद्धति के विकास में बौद्धों का बड़ा हाथ है। बौद्ध-विहारों में चिकित्सालय भी होते थे और बौद्ध भिक्षु रोगियों का इलाज करते थे। सम्राट अशोक ने अपने राज्य में बहुत से चिकित्सालय खोले थे और पड़ोसी राज्यों में भी वैद्य भेजे थे।

बौद्ध धर्म के साथ-साथ विदेशों में भारतीय चिकित्सा-ज्ञान का भी प्रचार-प्रसार हुआ। हमारे पड़ोसी देश श्रीलंका में आयुर्वेद का खूब विकास हुआ। श्रीलंका के राजा बुद्धदास (337-365 ई०) स्वयं एक योग्य चिकित्सक थे

और उन्होंने अपने देश में हर दस देहातों के लिए एक अस्पताल की स्थापना की थी। बाद में भी श्रीलंका के अनेक शासकों ने अस्पतालों की स्थापना की। कुछ प्राचीन अस्पतालों के खंडहर श्रीलंका में आज भी देखने को मिलते हैं। श्रीलंका में आयुर्वेद की परम्परा आज भी जीवित है।

बौद्ध धर्म के साथ आयुर्वेद का ज्ञान मध्य एशिया होता हुआ चीन तक पहुंचा। जानकारी मिलती है कि चीन के बौद्ध विहारों के अहातों में चिकित्सालय भी होते थे। पिछली सदी में बावेर महाशय ने चीनी तुर्किस्तान (पूर्वी मध्य एशिया) में कुछ हस्तलिपियाँ खरीदी थीं जो अब बावेर हस्तलिपियों के नाम से जानी जाती हैं। इनमें से कुछ हस्तलिपियाँ चिकित्साशास्त्र से सम्बन्धित हैं।

इनमें से नावनीतकम नामक पुस्तक में लहसुन के बारे में विशेष जानकारी दी गई है। विद्वानों की राय है कि यह पुस्तक तीसरी चौथी सदी में रची गई थी। इस पुस्तक के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इससे पहले चरक तथा सुश्रुत की संहिताएँ रची जा चुकी थीं।

फिर आयुर्वेद के दो प्रसिद्ध ग्रन्थ मिलते हैं। ये हैं—अष्टांग-संग्रह और अष्टांग हृदय। आयुर्वेद को आठ भागों में बांटने की परम्परा रही है। इसलिए 'अष्टांग' शब्द आयुर्वेद या चिकित्सा का द्योतक बन गया था। इन दो ग्रन्थों की रचना वाग्भट ने की है। आधुनिक जानकारी के अनुसार इन दो ग्रन्थों की रचना दो वाग्भटों ने की है। इनके समय के बारे में भी काफी उलझन है। इन्हें हम छठी से नवीं सदी के बीच रख सकते हैं। इसी काल में माधव नाम के एक प्रसिद्ध वैद्य हुए।

अष्टांग संग्रह तथा अष्टांग हृदय ग्रन्थ चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता पर आधारित हैं। इसलिए हम चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता के बारे में ही कुछ विशेष जानकारी प्राप्त करते हैं।

चरक-संहिता

चरक संहिता संस्कृत भाषा में लिखा हुआ गद्य पद्य मिश्रित ग्रन्थ है। इसमें 8 स्थान और 120 अध्याय हैं। प्रमुख विषय ये हैं

1 सूत्रस्थान इसमें 30 अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में आयुर्वेद की उत्पत्ति एवं परम्परा और इसके लक्षण तथा उद्देश्य के बारे में जानकारी दी गई है। फिर आगे के अध्यायों में औषधि का वर्णन, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सम्बन्धी बातें खान पान के बारे में नियम तथा वैद्य के गुण बतलाये गये हैं।

2 निदानस्थान इसमे आठ अध्याय हैं। इनमे ज्वर, रक्तपित्त, कुष्ठ आदि प्रमुख रोगो की जानकारी दी गई है।

3 विमानस्थान इसमे भी आठ अध्याय हैं और इनम रोगो के लक्षणो के बारे म विशेष जानकारी दी गई है।

4 शारीरस्थान इसम आठ अध्याय हैं। इस स्थान म शरीर की रचना तथा इसके अवयवो के बारे म मोटी जानकारी दी गई है। साथ ही गर्भधारण तथा गर्भ के विकास के बारे म भी जानकारी है। पुरातन काल से ही गर्भ धारण एक रहस्यमय विषय रहा है। इसलिए शारीरस्थान के कुछ अध्यायो म आध्यात्मिक एव दार्शनिक बातो का भी विवेचन है।

5 इन्द्रियस्थान सभी रोगो का इलाज सम्भव नही होता। वैद्यो की बदनामी न हो इसलिए उन्हें जानना होता था कि कौन-से रोग असाध्य होते हैं। जिन लक्षणो से पता चल जाता है कि रोगी की मृत्यु अवश्य होगी, उन्हे रिष्ट कहते है। इन्द्रियस्थान के 12 अध्यायो म असाध्य रोगो के इन्हीं रिष्टो (लक्षणो) के बारे मे जानकारी दी गई है।

6 चिकित्सास्थान इसम 30 अध्याय हैं। पहले अध्याय का विषय रसायन है और दूसरे अध्याय का वाजीकरण। ये दोनो ही विषय आयुर्वेद के अग हैं। वाजी का अर्थ है घोडा या वीर्य। अत वाजीकरण वह विद्या हुई जिससे आदमी म घोड़े जैसी ताकत आ जाती है।

जानकारी मिलती है कि चिकित्सास्थान के 17 अध्याय दृढबल ने लिखे हैं। परन्तु ये ठीक कौन-से अध्याय हैं, यह जान पाना आज सम्भव नही है। चरक-सहिता के शेष दो स्थान भी दृढबल ने ही लिखे हैं।

7 कल्पस्थान इसम वमन, विरेचन आदि द्रव्यो के बारे म जानकारी दी गई है। इसम 12 अध्याय हैं।

8 सिद्धिस्थान इसम भी बारह अध्याय हैं। वमन, विरेचन तथा वस्ति के असन्तुलित प्रयोग से होने वाले रोगो के सफल इलाज के बारे म इन अध्यायो मे जानकारी दी गई है।

सक्षेप म यही हैं चरक-सहिता के विषय। हम बता चुके हैं कि आयुर्वेद के आठ अग (अष्टाग) माने गए हैं। इनम म एक है काय चिकित्सा। काय शब्द के दो अर्थ हैं—शरीर और अग्नि। अत काय चिकित्सा का अर्थ हुआ, शरीर की चिकित्सा। यह भी मान्यता थी कि शरीर म अग्नि ठीक रहने से मनुष्य स्वस्थ रहता है। इसलिए अग्नि चिकित्सा एक प्रकार स शरीर चिकित्सा ही है।

चरक-सहिता काय चिकित्सा का प्रमुख ग्रन्थ होने पर भी इसम आयुर्वेद

के अन्य अगो के बारे म जानकारी दी गई है। हमने देखा है कि चिकित्सा स्थान म रसायन तथा वाजीकरण अगा की जानकारी है। आयुर्वेद क आठ अग कौन से है यह जानना जरूरी है, इसलिए हम इनका सक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

1 शल्यतन्त्र आधुनिक शब्दो म इसे हम शल्य चिकित्सा अथवा सर्जरी कहेंगे। शल्य शब्द का अर्थ है दुख या पीडा। अत जिन विधियो से शल्य को दूर किया जाय उनका समावेश शल्यतन्त्र म होता है। चरक सहिता म शल्य तन्त्र की विशेष जानकारी नही है परन्तु सुश्रुत सहिता शल्यतन्त्र का ही प्रमुख ग्रथ है। वाग्भट ने भी शल्य चिकित्सा की अच्छी जानकारी दी है।

2 शालाक्यतन्त्र किसी धातु या लकडी की सलाई को शलाका कहते हैं। आख कान नाक मुह आदि क रोगो के इलाज के लिए इन शलाकाओ का इस्तेमाल होता था। इसलिए गले क ऊपर के आँख कान नाक आदि अवयवो के रोगो की चिकित्सा को शालाक्यतन्त्र कहते थे। जानकारी मिलती है कि प्राचीन काल मे शालाक्यतन्त्र के कुछ स्वतन्त्र ग्रथो की रचना हुई थी।

3 काय चिकित्सा पहले हम बता चुके है कि मुख्यत औषधियो द्वारा की जाने वाली शरीर की चिकित्सा को काय चिकित्सा कहते हैं। चरक-सहिता इस विषय का प्रमुख ग्रथ है।

4 भूतविद्या *पिछले प्रकरण म हमने बताया है कि अथर्ववेद म पिशाच* राक्षस आदि को रोगोत्पत्ति के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है। बाद म केवल उन्माद से सम्बधित रोगो के लिए भूत प्रेत को जिम्मेदार ठहराया गया। मानसिक रोगो का इलाज झाड फूक स होता था, देहातो म आज भी होता है। यही है भूतविद्या।

5 कौमारभृत्य यह प्रसूति विज्ञान है। इसके अन्तर्गत गर्भिणी स्त्री, नवजात शिशु तथा बालको के रोगो का इलाज होता था। चरक सहिता तथा काश्यप सहिता म इस विषय की अच्छी जानकारी है। बुद्ध के समकालीन वैद्य जीवक भी इस विषय क विशेषज्ञ थ इसीलिए बौद्ध साहित्य म उनका पूरा नाम कौमारभृत्य जीवक मिलता है। परन्तु आज जीवक का कोई ग्रथ नही मिलता।

6 अगदतन्त्र यह विषतन्त्र है। विष दो प्रकार के होते थे—स्थावर और जागम। वनस्पति बीज आदि के विषो को स्थावर विष कहते थे और साप, बिच्छू आदि के विष को जागमी विष। राजा के रसोईघर मे तथा युद्धक्षत्र म विष के जानकार वैद्यो की जरूरत पडती थी। इसीलिए प्राचीन भारत म अगद

तन्त्र का स्वतन्त्र विकास हुआ था। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में आदेश दिया है कि राजा को चाहिए कि वह हमेशा अपने पास जागली विष को पहचानने वाले वैद्यों को रखे। कौटिल्य ने विषकन्याओं से बचने के उपाय भी बतलाए हैं।

7 रसायन तन्त्र बुढ़ापा तथा रोग दूर करने वाली औषधियों को रसायन कहा गया है (यज्जरा व्याधि विध्वंसि तद रसायनमुच्यते)। बाद में हमारे देश में रसायन का कीमियागरी के रूप में स्वतन्त्र विकास हुआ। इसकी विशेष जानकारी हम आगे देंगे।

8 वाजीकरण तन्त्र हम बता चुके हैं कि वाजी शब्द के दो अर्थ हैं—घोड़ा और वीर्य (शुक्र)। जिन विधियों से वीर्य में वृद्धि होकर मनुष्य में घोड़े जैसी ताकत आती है उन्हें वाजीकरण कहते हैं।

यही हैं आयुर्वेद के आठ अंग (अष्टांग)। चरक-संहिता में इन सभी अंगों की कम अधिक जानकारी मिलती है। परन्तु चरक-संहिता मुख्यत काय चिकित्सा का ग्रन्थ है।

चरक संहिता काफी बड़ा ग्रन्थ है। उस समय तक काय चिकित्सा के बारे में जितनी बातें जानी गई थीं, उन सबका इस ग्रन्थ में समावेश कर लिया गया है। इसमें आरोग्यशाला के निर्माण तथा इसकी व्यवस्था के बारे में बढ़िया जानकारी है। सूतिकागार की व्यवस्था के बारे में भी जानकारी दी गई है।

आयुर्वेद के अध्ययन के लिए आवश्यक गुरु और शिष्य के गुणों का चरक संहिता में अच्छा विवेचन है। उस समय भी कपटी या बनावटी वैद्य होते थे। ऐसे वैद्यों से सावधान रहने का उपदेश दिया गया है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के विद्यार्थी अध्ययन पूरा करने के बाद प्रमाण-पत्र प्राप्त करते समय हिप्पोक्रेत की शपथ' ग्रहण करते हैं। चरक-संहिता से जानकारी मिलती है कि उस जमाने में भी चिकित्सा का पेशा अपनाने वाले वैद्य अपने पेशे के प्रति वफादार बने रहने की शपथ ग्रहण करते थे।

सब बातों पर विचार करने से पता चलता है कि उस जमाने में चिकित्सा शास्त्र अन्य विज्ञानों से काफी आगे बढ़ा हुआ था। इसके कई कारण हैं। एक, चिकित्साशास्त्र ने अपने को काफी हद तक धर्म-कर्म से जुदा कर लिया था। यह एक अनुभवजन्य एवं प्रायोगिक विज्ञान था। चरक-संहिता में एक स्थान पर कहा गया है कि वैद्य को जंगल में रहने वाले तपस्वियों तथा गड़रियों से वनस्पतियों के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

दूसरी बात यह है कि चिकित्सा का पेशा केवल ब्राह्मण-पुरोहितों तक

सीमित नहीं रहा। समाज के किसी भी स्तर का व्यक्ति इस पेशे को अपना सकता था। बाप यदि वैद्य हो तो बेटा भी वैद्य ही बने, यह जरूरी नहीं था (न वैद्य पूर्वजन्मन)। इसी स्वस्थ दृष्टिकोण के कारण उस जमाने में यह विज्ञान तेजी से उन्नति कर पाया। लेकिन आगे इसका अधिक विकास नहीं हो पाया। बाद मे हमारे देश में काय चिकित्सा के ऐसे किसी ग्रन्थ की रचना नहीं हुई जो चरक-संहिता से काफी बढ़ा चढ़ा हो। आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धति में *आज भी चरक-संहिता को प्रमाण-ग्रन्थ माना जाता है।*

सुश्रुत-संहिता

सुश्रुत संहिता मुख्यत शल्य चिकित्सा का ग्रन्थ है। हम बता चुके हैं कि सुश्रुत संहिता के उपदेशक हैं **धन्वन्तरि (काशीराज दिवोदास)** और श्रोता एव रचयिता हैं *सुश्रुत। इन दोनों के बारे में हमें कोई ठोस ऐतिहासिक जानकारी* नहीं मिलती।

ईसा की ग्यारहवीं सदी में डल्हणाचार्य ने सुश्रुत संहिता पर टीका लिखी थी। उसमें वे जानकारी देते हैं कि नागार्जुन सुश्रुत संहिता के प्रतिसंस्कर्ता हैं। हमने देखा है कि चरक भी चरक-संहिता के प्रतिसंस्कर्ता ही हैं। इस प्रकार, चरक और नागार्जुन समान स्तर के व्यक्ति है और सम्भवत वे एक ही समय में हुए।

ईसा की दूसरी सदी मे नागार्जुन नाम के एक प्रख्यात बौद्ध दार्शनिक हुए। वे चिकित्सक के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। अत लगता है कि सुश्रुत संहिता का शुद्ध संस्करण उन्हीं ने तैयार किया होगा। अन्य बातों से भी सिद्ध होता है कि वर्तमान सुश्रुत संहिता ईसा की दूसरी सदी के पहले की रचना नहीं है। इतना निश्चित है कि उपलब्ध चरक संहिता या सुश्रुत संहिता की रचना का श्रेय किसी एक व्यक्ति को नहीं दिया जा सकता।

आयुर्वेद के ग्रन्थों को 120 अध्यायों में विभाजित करने की परम्परा रही है। सुश्रुत संहिता में भी 120 अध्याय हैं। इन्हें पाँच स्थानों में बाटा गया है। ये पाँच स्थान हैं—सूत्रस्थान, निदानस्थान शारीरस्थान चिकित्सास्थान और कल्पस्थान। इनके अलावा सुश्रुत संहिता मे परिशिष्ट के रूप मे उत्तरतन्त्र भी जोड़ा गया है जिसमें 66 अध्याय हैं। चरक संहिता की तरह सुश्रुत संहिता भी गद्य-पद्य में लिखी गई है।

सुश्रुत संहिता के सूत्रस्थान में शल्य चिकित्सा की विधियों के बारे में विस्तृत जानकारी है। आरम्भ मे आयुर्वेद की परम्परा अष्टांग के लक्षण

गुरु शिष्य के सम्बन्ध, शस्त्रकर्म के लिए आवश्यक गुण, आदि की जानकारी दी गई है। सातवें और आठवें अध्यायों में यन्त्रों तथा शस्त्रों के बारे में जानकारी दी गई है।

यन्त्रों की संख्या 101 बतलाई गई है लेकिन हाथ को ही मुख्य यन्त्र माना गया है। आकृतियों के अनुसार यन्त्रों को 6 प्रकारों में बाटा गया है— स्वस्तिकयन्त्र संदशयन्त्र, तालयन्त्र, नाडीयन्त्र, शलाकायन्त्र और उपयन्त्र।

सुश्रुत संहिता में वर्णित शल्य-चिकित्सा के कुछ यन्त्र। काक मुख, सिंहमुख गृध्रमुख (स्वस्तिकयन्त्र) आदि इनके नाम हैं।
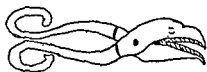
ये यन्त्र मुख्यत लोहे के होते थे और हिंस्र पशु तथा पक्षियों के मुह के आकार के होते थे। जसे स्वस्तिकयन्त्र 24 प्रकार के थे और इनके मुह सिंह भेडिये, चीते, कौवे आदि के मुह जसे होते थे।

संदशयन्त्र सडसियां तथा चिमटियाँ होते थे। इनसे त्वचा, मास, शिरा आदि को खींचा जाता था। तालयन्त्र चम्मच के आकार के होते थे और इनसे नाक कान आदि का मल निकाला जाता था। नाडीयन्त्र खोखले होते थे और कण्ठ, भगन्दर आदि की पीडा में इनका इस्तेमाल होता था। इसी तरह अन्य प्रकार के यन्त्रों की रचना तथा इनके इस्तेमाल के बारे में सूक्ष्म जानकारी दी गई है।

चीरने फाडने या काटने के लिए शस्त्रों का इस्तेमाल होता था। सुश्रुत संहिता में शस्त्रों की संख्या बीस बतलाई गई है। मण्डलाग्र करपत्र, मुद्रिका, व्रीहिमुख आदि इनके नाम हैं। इन शस्त्रों से फल कन्दमूल तथा साग सब्जियों पर काटने छेदने आदि के विविध प्रयोग करके शल्यकर्म सीखने की जानकारी दी गई है। खून निकालने के लिए जोक के इस्तेमाल की भी जानकारी है।

आग शारीरस्थान म शवच्छेदन के बारे म भी जानकारी दी गई है। इसके लिए किसी अच्छे शव को प्राप्त करके उसे पिजडे म बन्द करके नदी के बहते जल म सात दिन तक रख दिया जाता था। फिर मुलायम कूचिया से घुरचकर उस शव की परीक्षा की जाती थी।

प्राचीन भारत म प्रत्यक्ष एव प्रायोगिक नान को इतना महत्त्व दिया जाना सचमुच ही अदभुत बात है। समझ म नही आता कि उस जमाने क शल्य चिकित्सको को निराग शव कहाँ स मिलते होगे।

उस समय भी निरन्तर लडाइया होती रहती थी। इसलिए सेना क साथ शल्य चिकित्सको का होना जरूरी माना गया था। सेना की शल्य चिकित्सा की जानकारी देने के लिए सुश्रुत सहिता म युक्तसनीय नाम से एक अध्याय है।

उस समय अपराधिया को तरह-तरह क दण्ड दिए जाते थे। उनकी नाक या कान काट दिये जाते थ। इसलिए नकली नाक लगवाना बहुता क लिए जरूरी हो जाता था। सुश्रुत सहिता के सूत्रस्थान के सोलहवें अध्याय म कान,
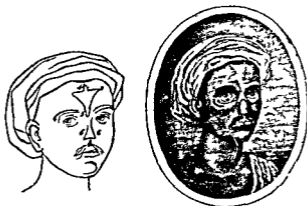
सन 1794 ई० मे लन्दन की 'जन्टलमन्ज मगज़ीन' नामक पत्रिका म प्रकाशित महाराष्ट्र क एक वद्य द्वारा की गई नाक की प्लास्टिक सजरी के विवरण के साथ दिया गया चित्र।

नाक तथा आठ की प्लास्टिक सजरी के बारे म जानकारी दी गई है ।

प्लास्टिक सजरी भारत की खोज है । मध्ययुग म प्लास्टिक सजरी का नान इटली आदि यूरोप के देशो मे पहुचा । फिर अठारहवी सदी के अन्तिम दशक म ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दो डाक्टरा ने महाराष्ट के वद्या का नाक की प्लास्टिक सजरी करन देखा । इसका विवरण लन्दन की एक पत्रिका मे प्रकाशित हुआ । तन्नन्तर ही यूरोप म प्लास्टिक सजरी का तेजी स विकास हुआ । प्लास्टिक सजरी की एक विधि आज भी भारतीय विधि के नाम से प्रसिद्ध है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुश्रुत सहिता शल्य चिकित्सा का एक वनानिक ग्रथ है । लेकिन वाद म हमारे देश म इस विज्ञान की उन्नति नही हुइ । वाग्भट न शल्य चिकित्सा की जानकारी दी है परतु वह सारी सुश्रुत-सहिता पर आधारित है ।

नावनीतक

प्राचीन काल म मध्य एशिया क साथ भारत के घनिष्ठ सम्बध रह हैं । मध्य एशिया से खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपि में लिखी हुई अनेक प्राचीन पुस्तकें मिली हैं । 1890 ई० में काशगर (चीनी तुर्किस्तान पूर्वी मध्य एशिया) स चिकित्सा स सम्बधित कुछ हस्तलिपिया बावेर नामक व्यक्ति न खरीदी, जा अब बावेर हस्तलिपियों के नाम से जानी जाती है । हानले ने इन्हे प्रकाशित किया है ।

ताडपत्र पर लिखी हुई ये पाच पुस्तकें खण्डित और अधूरी हैं । फिर भी भारतीय चिकित्साशास्त्र की दृष्टि स इनका बडा महत्व है । इनम से पहली पुस्तक में 31 पन्ने हैं और इस तीन भागा में बाँटा गया है । पहले भाग में लहसुन क गुणो के बारे में जानकारी दी गई है । दूसरे भाग का नाम नावनीतकम् है । नावनीतक के 16 प्रकरणा में घी, चूण, तेल, आख की औपधि केशरजन आदि के योग (फार्मूले) दिए गए है ।

नावनीतक म दिए गए ये योग चरक सहिता सुश्रुत-सहिता तथा भेल-सहिता पर आधारित हैं । इसलिए स्पष्ट है कि इन सहिताआ की रचना नावनीतक क पहले हो चुकी थी । सब बाता पर विचार करके विद्वान इस परिणाम पर पहुँच हैं कि नावनीतक की रचना ईसा की चौथी सदी म हुई होगी । य बावर हस्तलिपियाँ कुछ अशुद्ध सस्कृत भाषा म लिखी गई हैं । उस जमाने के अनेक बौद्ध ग्रथ इसी प्रकार की कुछ अशुद्ध सस्कृत भाषा म लिखे गए हैं । जा भी हो चिकित्साशास्त्र का यह ग्रथ मध्य एशिया म मिला है इसलिए इसका विशेष महत्त्व है ।

वाग्भट

चिकित्साशास्त्र के अष्टाग-सग्रह और अष्टाग हृदय ग्रथ खूब प्रसिद्ध हैं। इन दोना ग्रथा के रचयिता वाग्भट हैं। इन दोना ग्रथो की रचना एक वाग्भट ने की है या दो वाग्भटो ने इस बात को लेकर काफी वाद विवाद है। सम्भव यही जान पडता है कि वाग्भट दो हुए हैं।

हम बता चुके हैं कि आयुर्वेद के आठ अग माने गए थे, इसलिए अष्टाग शब्द आयुर्वेद का ही द्योतक है। अष्टाग-सग्रह गद्य-पद्य म लिखा गया है और अष्टाग हृदय केवल पद्य मे। पद्य म होने स अष्टाग हृदय को खूब प्रसिद्धि मिली। इस पर पतीस से भी अधिक टीकाए लिखी गइ और ग्यारहवी सदी म इस ग्रथ का तिब्बती भाषा म भी अनुवाद हुआ था।

ये दोना ग्रथ मुख्यत चरक सहिता और सुश्रुत-सहिता पर आधारित हैं पर इनमे कुछ नई जानकारी भी है। इन ग्रथो के रचना काल के बारे म निश्चित रूप स कुछ नही कहा जा सकता किन्तु लगता है कि इनकी रचना सातवी आठवी सदी म हुई है। इन ग्रथा के अध्ययन स यह भी पता चलता है कि वाग्भट बौद्ध धम के अनुयायी थे। इन ग्रथा म बौद्ध धम स सम्बधित अनेक शब्दा का उल्लेख है।

आठवी-नौवी सदी म हमारे देश म पुराने वदिक धम को पुन जीवित करने के प्रयास हुए। पुरान ग्रथो को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। वाग्भट बौद्ध थ और उनके ग्रथ म चिकित्सा से सम्बधित कुछ नई बातें थी, इसलिए उस समय के कुछ लोगा न उनका विरोध किया होगा। अत वाग्भट कहत है कि पुराने ग्रथा का राग आलापना व्यथ है जहाँ भी अच्छी चीज मिले, उस ग्रहण कर लेना चाहिए।

वाग्भट के ग्रथो के बाद हमारे देश म आयुर्वेद के कुछ ग्रथा की रचना हुई पुराने ग्रथा पर बहुत सी टीकाएँ भी लिखी गइ किन्तु उनमे नवीनता नही है।

पशु चिकित्सा

प्राचीन काल के युद्धा म हाथिया और घोडो का बडा महत्त्व था। इसलिए इनकी चिकित्सा का विकास हुआ और हाथी तथा घाडे की चिकित्सा के बारे म ग्रथ भी लिखे गए। कुछ ग्रथ आज भी मिलत है।

पालकाप्य सहिता हस्ति-आयुर्वेद का ग्रथ है। इसम आचाय पालकाप्य

हाथिया के रोगों के बारे मे अगदेश के राजा रोमपाद को जानकारी देत हैं। इस ग्र य की योजना भी आयुर्वेद की अ य सहिताओ की तरह ही है।

शाल्हिोत्र सहिता मे मुख्यत घोडा के रोगा के इलाज के बारे मे जानकारी दी गई है। अश्व चिकित्सा पर नकुल और जयदत्त की लिखी हुई पुस्तकें भी मिलती हैं। हमारे देश मे पशु चिकित्सा की परम्परा बहुत पुरानी है। कौटिल्य के अथशास्त्र म पशु चिकित्सको तथा हस्ति चिकित्सको के बारे मे जानकारी मिलती है। सम्राट अशोक ने अपने राज्य म पशुआ की चिकित्सा का भी अच्छा प्रब ध किया था।

प्राचीन काल मे हमारे देश मे पेड-पौधा की चिकित्सा का भी विकास हुआ है। इस चिकित्सा को वृक्षायुर्वेद कहत थे। आयुर्वेद की चिकित्सा म वनस्पति का खूब इस्तेमाल हाता है इसलिए इस विद्या को भेषजविद्या भी कहते थे। आज वृक्षायुर्वेद का कोई स्वतन्त्र ग्र य नही मिलता किन्तु बहुत सारे प्राचीन ग्र था में इसके बारे मे जानकारी मिलती है। बाद मे निघटु नाम से कई वनस्पति-काश तयार किए गए थे।

आदान-प्रदान

चरक-सहिता तथा सुश्रुत सहिता का नाम न केवल देश म बल्कि विदशा म भी फ ा। दक्षिण पूव एशिया के देशो म भी इन ग्रथा का प्रचार हुआ। इस्लाम के उ यकाल म ही अरबा को इन ग्र यो की जानकारी मिली और अरबी म इनका अनुवाद हुआ। खलीफाओ के शासनकाल म बगदाद के अस्पतालों मे भारतीय चिकित्सका की सम्मान के साथ नियुक्तियाँ होती थीं।

ईसा पूव पाचवी सदी मे हिप्पोक्रेत नाम के एक बहुत बडे यूनानी चिकित्सक हुए। उनके नाम से लिखे हुए चिकित्सा के बहुत सारे ग्र य मिलते हैं। हिप्पोक्रेत की चिकित्सा-पद्धति तथा आयुर्वेद की चिकित्सा-पद्धति मे अनेक बातें समान हैं इसलिए किसने किससे क्या लिया इस बात को लेकर काफी वाद विवा है। जस, भारतीय चिकित्सा का वात, पित्त तथा कफ का त्रिदोष सिद्धा त यूनानी चिकित्सा पद्धति म भी दखने को मिलता है।

इस समस्या के समाधान के लिए हमें एक ऐतिहासिक तथ्य पर विचार करना चाहिए। सामान्यत यह माना जाता है कि ईसा पूव चौथी स ी के उत्तराध म भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश पर सिक दर के हमले के बाद ही हम यूनानिया के सम्पक म आए। परन्तु यह बात सही नही है।

ईसा पूव छठी सदी मे पश्चिमोत्तर भारत का गाधार प्रदेश ईरान के

हखामनी साम्राज्य का एक प्रात था । दरअसल, उस समय तक सिधु नदी के पश्चिम की ओर का सारा प्रदेश हखामनी राज्य के अन्तगत था । गाधार देश की राजधानी तक्षशिला भी हखामनी राज्य मे थी । उस जमाने म तक्षशिला ज्ञान विज्ञान का प्रसिद्ध केद्र था परतु हखामनी सम्राटो का उस पर अधिकार था ।

दूसरी ओर हखामनी साम्राज्य की सीमा भूमध्य सागर और आयोनिया (एशिया माइनर) से जा भिडती थी । हखामनी सम्राटो की सेवा म बहुत से यूनानी चिकित्सक थे । इसलिए उस समय भारतीय विद्वान अवश्य ही यूनानी विद्वानो क निकट सम्पक म आए होगे । ऐसी स्थिति म ज्ञान विज्ञान का अवश्य आदान प्रदान हुआ होगा । ईरान पर सिकदर के हमले क समय तक गाधार दश ईरान के ही अधिकार म था । सिकदर के बाद भारतीयो और यूनानियो का और अधिक मेल-जोल हुआ । दोनो ने एक दूसरे से ज्ञान विज्ञान की बातें सीखी है ।

शून्य पर आधारित स्थानमान अंक-पद्धति का आविष्कार

आज हम अपनी सारी गणनाएँ केवल दस अंक संकेतों से करते हैं। सारे संसार में आज इसी अंक पद्धति का व्यवहार होता है। यह अंक-पद्धति भारत की खोज है। इस पुस्तक के आरंभ में ही हमने बताया है कि यह वैज्ञानिक अंक पद्धति संसार को भारत की सबसे बड़ी देन है। इस प्रकरण में हम देखेंगे कि इस अंक पद्धति की खोज भारत में कब और कैसे हुई।

वैदिक काल के विज्ञान पर विचार करते समय हमने देखा है कि उस समय अंक संकेतों का अस्तित्व अवश्य रहा होगा, लेकिन वे अंक संकेत कैसे थे इसके बारे में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती। इतना निश्चित है कि वैदिक काल के पण्डित पुरोहितों ने शून्य पर आधारित स्थानमान अंक पद्धति की खोज नहीं की है।

आगे कई सदियों तक इस नई अंक पद्धति की खोज नहीं हुई। इसके लिए ठोस सबूत भी हैं। अंक संकेतों का इस्तेमाल अक्षरों के साथ ही होता है। हमारे देश की सबसे पुरानी लिपि है सिन्धु सभ्यता की लिपि, जो अभी तक पढ़ी नहीं गई है। फिर हम अशोक के लेख मिलते हैं। ये लेख ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों में हैं। इन्हीं लेखों में हमें पहली बार अंक-संकेत देखने को मिलते हैं। लेकिन अशोक के समय (ईसा पूर्व तीसरी सदी) की अंक-पद्धति आज की अंक-पद्धति से भिन्न थी।

अशोक के समय की अंक पद्धति में शून्य नहीं था। उस समय अभी केवल दस संकेतों से सारी संख्याएँ लिखने की खोज नहीं हुई थी। उस समय 1 से 10 तक की संख्याओं के लिए अलग-अलग संकेत थे। आगे 20, 30, 40 50 , 100 200 आदि के लिए भी स्वतन्त्र संकेत थे। अशोक के ब्राह्मी लिपि के लेखों में सारे अंक संकेत देखने को नहीं मिलते। अशोक के ब्राह्मी लेखों में जो

अंक-संकेत मिलते हैं, वे ये हैं

4	6	50	200
+	६, ϕ	ɓ, ɔ	ɦ, ℋ, ℍ

अशोक के ब्राह्मी लेखों के अंक-संकेत

यहां हम देखते हैं कि 50 और 200 के लिए केवल एक एक संकेत हैं और ये भी भिन्न भिन्न आकार के हैं। अशोक के ब्राह्मी लेखों के सिर्फ इन चार संख्या संकेतों से उस समय की अंक पद्धति का स्वरूप पूरी तरह स्पष्ट नहीं होता, लेकिन दो-तीन सदियां बाद के अंक-संकेतों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि अभी शून्य पर आधारित दशमिक अंक-पद्धति की खोज नहीं हुई थी।

अशोक के बाद जब उसका साम्राज्य टूट गया तो महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में सातवाहनों का शासन शुरू हुआ था। लगभग उसी समय से उत्तरी महाराष्ट्र में शकों का भी शासन शुरू हुआ। उस समय पश्चिमी महाराष्ट्र में पहाड़ों को काटकर बहुत सारी गुफाएँ बनाई गई थीं। इन गुफाओं में दान से सम्बन्धित लेख भी मिलते हैं। इन लेखों में अंक-संकेत भी पाए जाते हैं। जैसे नाणेघाट की गुफा में निम्नलिखित अंक संकेत देखने को मिलते हैं

1	2	4	6	7	9	10
—	=	ㄔ¥	Ƴ	ʔ	ʔ	∝∝∝

20	80	100	200	300	400	700
O	Φ	ਟ	ਟ	ਟ	ਟ	ਟ

1000	4000	6000	10,000	20 000
T	T¥	Tϕ	T∝	TO

नाणेघाट लेखों के अंक-संकेत

यहां हम देखते हैं कि 1 से 10 तक के लिए स्वतन्त्र संकेत हैं। आगे 20 से 100 तक की दहाइयों के लिए भी स्वतन्त्र संकेत हैं। 200 300, 400 आदि के संकेत 100 के संकेत के साथ 1 2 3 4 आदि के संकेत जोड़कर बनाए

गए हैं। 1000 के लिए फिर एक नया सकेत है और हजारो की सख्याएँ इसी सकेत के साथ 1 2, 3 4 आदि के सकेत जोडकर बनाई गई है।

अत स्पष्ट है कि इसा की पहली सदी तक हमारे देश मे शून्य पर आधारित स्थानमान अक-पद्धति का प्रचलन नही था।

अशोक के समय म पश्चिमोत्तर भारत म खरोष्ठी लिपि का व्यवहार होता था। इस लिपि का निर्माण पश्चिमी एशिया की आरमेई लिपि से हुआ था। अशोक ने पश्चिमोत्तर भारत के अपन लेख खरोष्ठी लिपि म खुदवाये थ। इन लेखा म चार अक सकेत भी मिलत हैं, जो तिरछी खडी रेखाएँ हैं। बाद म शक, कुषाण आदि शासका ने भी अपने लेखा म इस खरोष्ठी लिपि का इस्तेमाल किया। इन लेखा म अक-सकेत भी हैं। खरोष्ठी लिपि दायी ओर से बायी ओर को लिखी जाती थी इसलिए उसके अक सकेत भी दायी ओर से बायी ओर को पढे जाते हैं। नीचे हम खरोष्ठी के अक सकत द रहे हैं

शक पार्थव और कुषाणो के अभिलेखो से								अशोक के अभिलेखो से	
ʃI	100	33	40	IIX	6	I	I	1
ʃII	200	733	50	IIIX	7	II	II	2
ʃIII	300	333	60	XX	8	III		
II3ʃI	122	7333	70	7	10	X	IIII	4
XI 373ʃII	274	3333	80	3	20	IX	IIIII	5

खरोष्ठी अंक-संकेत

यहाँ देखिए कि सख्या 274 किस प्रकार लिखी गइ है। दायी ओर 200 के तीन सकेत हैं फिर 70 के चार सकेत हैं और अन्त म 4 का सकेत है। इस प्रकार 274 को लिखने के लिए कुल आठ सकेतो का इस्तेमाल हुआ है। स्पष्ट है कि यह शून्य पर आधारित दशमिक स्थानमान अक-पद्धति नहीं है।

दरअसल, ईसा पूर्व की पहली सदी तक अभी नई अक-पद्धति की खोज नही हुई थी। ससार के अन्य देशो म तरह-तरह की अक-पद्धतिया का इस्तेमाल होता था किन्तु नई अक-पद्धति (दशमिक पद्धति) के दशन कहीं नहीं

होत। हमारे देश मे भी इस नई अक-पद्धति के इस्तेमाल के बारे म ईसा की छठी सदी तक ठोस सबूत नही मिलत। पहली बार 594 ई० के एक दानपत्र म सख्या 346 को हम इस नई अक पद्धति म लिखी हुई देखत हैं।

लेकिन साहित्यिक प्रमाणा स जानकारी मिलती है कि हमारे दश म इस नई अक-पद्धति की खोज ईसा की आरम्भिक सदिया म हो चुकी थी। पुरानी अक पद्धति के स्थान पर इस नई अक पद्धति को अपनाने म कई सदिया का समय लगा होगा। पुराने का मोह जल्दी नही छूटता। हम जानते है कि नई अक-पद्धति की खोज होने पर भी कुछ अभिलेखा म ईसा की दसवो सदी तक पुरानी अक पद्धति का इस्तेमाल होता रहा। यूराप के दशा में यह नई अक पद्धति नौवी सदी म पहुंच गई थी फिर भी यूरोप म पुरानी रोमन तथा यूनानी अक-पद्धतिया का 1700 ई० तक प्रभुत्व रहा।

हम नही जानत कि भारत म इस नई अक पद्धति का आविष्कार ठीक किस समय तथा किस स्थान पर हुआ और किस पडित ने किया। आज यह सब जानने *के लिए हमारे पास साधन नही हैं। उपलब्ध साधनो के आधार* पर हम सिफ यही जान सकते हैं कि अनुमानत किस सदी म इस नई अक पद्धति की खोज हुई होगी।

हमने देखा है कि वेदा मे 'शून्य' शब्द नही मिलता। गणना क सदभ म शून्य शब्द का प्रयोग आचाय पिंगल के छन्द सूत्र म देखने को मिलता है। यह ग्रन्थ ईसा के एक दो सदी पहल रचा गया था। इसमे छदो की मात्राओ की गिनती क सदभ मे 'रूप शून्यम, द्वि शून्ये जसे शब्द आए हैं। हिसाब कुछ ऐसा है कि *यहा 'अभाव या घटाने* के अथ म शून्य शब्द का प्रयोग हुआ है। लगता है कि उस समय गणना मे शून्य की धारणा जन्म ले रही थी। आगे जन ग्रन्था म और कुछ पुराणा म अकस्थान शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है जो सम्भवत अका के स्थानमान का द्योतक है।

या	या	या		
1	2	3	4	5
6	7	8	9	0

मक्षाली हस्तलिपि के अक-सकेत

करीब सौ साल पहले पेशावर जिले के भक्षाली गाँव से गणित से सम्बन्धित एक हस्तलिखित पुस्तक मिली थी, जो अब मक्षाली हस्तलिपि के नाम से प्रसिद्ध है। यह पुस्तक बाद की शारदा लिपि मे लिखी हुई है, परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि मूल पुस्तक की रचना ईसा की चौथी-पाचवी सदी म हुई होगी। इस पुस्तक म 1 से 10 तक के अक-सकेत दिए हुए है और नई अक पद्धति का इस्तेमाल हुआ है। इसम शून्य के लिए बिंदी के आकार का चिह्न है।

सब बातो पर विचार करके हम इस परिणाम पर पहुचते है कि ईसा की पहली या दूसरी सदी म शून्य पर आधारित इस नई अक-पद्धति की खोज हो चुकी थी। 594 ई० के जिस दानपत्र मे 346 सख्या नइ अक-पद्धति म लिखी गई है उसमे शून्य का सकेत नही है। लेकिन आठवी सदी के एक दानपत्र म सख्या 30 मे शून्य है और इसे एक छोटे वृत्त के रूप म लिखा गया है।

नइ अक-पद्धति ईसा की सातवीं सदी में दक्षिण-पूर्व एशिया के देशो में भी पहुच गइ थी। सुमात्रा, बका तथा चम्पा से ऐसे कुछ अभिलेख मिले हैं जिनमें नई पद्धति के सख्याको का प्रयोग हुआ है। भारतीयो के साथ ही यह नई अक-पद्धति उन देशों में पहुची थी।

दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से प्राप्त अभिलेखों मे नई अक-पद्धति मे दी गई शकाब्द-सूचक तीन सख्याएँ।

साराश यह है कि नई अक पद्धति की खोज ईसा की पहली-दूसरी सदी में हुई अभिलेखों में इसका इस्तेमाल छठी सदी से होने लगा और दसवी सदी के बाद म सिर्फ इसी नई अक पद्धति का व्यवहार देखने को मिलता है। इस बीच हमारे देश में गणित व ज्योतिष के बहुत सारे ग्रन्थ लिखे गए। लेकिन ये ग्रन्थ पद्य में हैं, इसलिए इनमें शब्दाकों या अक्षराकों का इस्तेमाल हुआ है, जिनकी जानकारी हम आगे देंगे। अब यहाँ हम देखेंगे कि भारत की इस नइ अक पद्धति का विदेशों में प्रचार प्रसार कैसे हुआ।

अरब देशों में भारतीय अंक-पद्धति

अरब देशों के साथ भारत के सम्बन्ध बहुत पुराने हैं। ईसा की आरम्भिक सदियों में फारस की खाड़ी और सिकन्दरिया के बन्दरगाह तक भारतीय माल पहुंचता था। लेकिन यह उस समय की बात है जब अभी दक्षिण अरबिया के लोग इस्लाम में दीक्षित नहीं हुए थे और भारत में नई अंक-पद्धति का पूरा विकास नहीं हुआ था।

सन् 622 ई० में अरबिया में इस्लाम की स्थापना होती है। आगे के सौ साल में ही इस्लाम का झंडा पूर्व में भारत की सीमा तक और पश्चिम में स्पेन तक फहराने लगता है। राजधानी बगदाद से खलीफा सारे इस्लामी राज्य पर शासन करने लग जाते हैं। बगदाद इस्लामी संस्कृति तथा विद्या का केन्द्र बन जाता है।

खलीफा ज्ञान-विज्ञान के प्रेमी थे। उनके शासनकाल में अनेक यूनानी ग्रन्थों के अरबी भाषा में अनुवाद हुए। फिर उन्हें भारतीय ज्ञान-विज्ञान की जानकारी मिली। खलीफा अल्-मन्सूर के राज्यकाल (753-774 ई०) में सिन्ध के किसी राजा के दूत बगदाद पहुंचे थे। उनके साथ कुछ पंडित भी थे। ये पंडित अपने साथ ज्योतिष के ग्रन्थ ले गए थे। यह 771 ई० की बात है। खलीफा की आज्ञा से अरबी भाषा में इन ग्रन्थों के अनुवाद हुए। बाद में ज्योतिष, गणित तथा चिकित्सा से सम्बन्धित अनेक भारतीय ग्रन्थों के अरबी में अनुवाद हुए।

इसी समय अरबों को भारतीय अंक-पद्धति की जानकारी मिली। अरबों की अपनी लिपि थी, अंक-संकेत भी थे। भारतीय अंक-पद्धति की वैज्ञानिकता को समझकर अरबों ने आरम्भ में भारतीय अंक-पद्धति के साथ-साथ भारतीय अंक-संकेतों को भी अपना लिया। भारतीय अंकों को वे गुबार अंक कहते थे। गुबार का अर्थ होता है धूल। हमारे देश में पाटी पर धूल बिछाकर उंगली से अंक लिखने का भी रिवाज रहा है। इसलिए गणित के पुराने ग्रन्थों में अंकगणित के लिए धूलिकर्म शब्द मिलता है। अरबी गणितज्ञों ने आरम्भ में अपनी पुस्तकों में भारतीय अंक-संकेतों का इस्तेमाल किया है। देखिए इनका नमूना

[गुबार अंक: 1 से 9 और 0 के संकेत]

दसवीं सदी की एक अरबी पुस्तक में गुबार (भारतीय) अंक

आरम्भ मे अरब देशो मे अरबी तथा गुबार अंक दोनो का ही इस्तेमाल होता रहा। फिर अरबो ने अपने अरबी अंक-संकेतो को ही पसन्द किया। अंक पद्धति तथा शून्य का संकेत भारतीय थे, परन्तु 1 से 9 तक के अंक-संकेत अरबी थे। दरअसल, महत्त्व की चीज थी अंक-पद्धति, न कि अंक-संकेत। देखिए अरबी अंक-संकेत

١ ٢ ٣ ٤ ٥ ٦ ٧ ٨ ٩ ٠

अरबी अंक-संकेत। यहाँ शून्य के लिए एक बिन्दी है।

ऐसा लगता है कि भारतीय व्यापारियो के माध्यम से भारतीय अंक-पद्धति की ख्याति सिकन्दरिया के बन्दरगाह तथा पश्चिमी एशिया के सीरिया आदि देशो मे कुछ पहले ही पहुच गई थी। सातवी सदी के सीरिया के एक विद्वान सेवेरस सेबोख्त लिखते हैं—'मैं हिन्द वालो के सारे शास्त्रो की चर्चा नहीं करूँगा। मैं उनकी अदभुत गणनाओ के बारे मे भी नहीं कहूँगा। मैं सिर्फ यही कहना चाहता हूँ कि यह गणना नौ चिह्नो से होती है।'

शून्य के चिह्न को अंक मानने का रिवाज हमारे यहाँ भी नही है। अत सेबोख्त के नौ चिह्नो वाली गणना का स्पष्ट अर्थ है—नई स्थानमान अंक-पद्धति। बहुत सम्भव है कि अरबो को इस भारतीय अंक-पद्धति की जानकारी सबसे पहले सीरिया से ही मिली होगी।

अरबी विद्वानो ने भारतीय अंको की खूब स्तुति की है। अनेक अरबी गणितज्ञों ने स्पष्ट लिखा है कि उन्हें यह अंक-पद्धति हिन्द से प्राप्त हुई है। अन्त मे अरबो के माध्यम से ही इस भारतीय अंक-पद्धति का यूरोप मे प्रचार-प्रसार हुआ।

यूरोप मे भारतीय अंक तथा अंक पद्धति

ईसा की दसवीं ग्यारहवी सदी मे अरबो ने स्पेन मे कई विद्या-केन्द्रो की स्थापना की थी। यूरोप के पण्डित पुराने यूनानी ज्ञान को भूल चुके थे, परन्तु

यह ज्ञान अब अरबी ग्रन्थो म सुरक्षित था। इसी ज्ञान की खोज म यूरोप के विद्वान अब स्पेन के अरबी विद्या-केन्द्रो म पहुचने लगे। इन विद्या केन्द्रो म, न केवल यूनानी ग्रन्थो के, बल्कि भारतीय ग्रन्थो के भी अनुवाद उपलब्ध थ। अल-ख्वारिज्मी (825 ई०) जसे प्रख्यात मध्य एशियाई गणितनो ने भारतीय गणित के आधार पर ग्रन्थ लिखे थ और इनमे भारतीय अक सकेत तथा अक-पद्धति की जानकारी दी गई थी। अब इन ग्रन्थो के लटिन भाषा म अनुवाद होन लग। इसी समय यूरोप के विद्वानो को भारतीय अक-सकेत अक पद्धति तथा गणित की विधियो के बारे म ठोस जानकारी मिली। ज्ञान विनान के लिए यूरोप मूरो (यूरोप के अरबो) का कितना ऋणी है, इसके बारे म गणितशास्त्र क प्रसिद्ध इतिहासन हूपर महाशय लिखते हैं

'बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिनके लिए हम मूरो (अरबो) के कृतन हैं। उन्होन औषधि और चिकित्सा विनान सम्बन्धी बहुत-सी बातें हम दी। सबसे बडी बात यह है कि उन्होने अन्धकार म सोए हुए असभ्य यूरोप म भारत व पूव के देशो के ज्ञान का प्रकाश फलाया। हिन्दवालो से सीखी हुइ नई अदभुत अक पद्धति का उन्होंने ही स्पेन म प्रचार किया। इसी नई अक पद्धति न विनान और इन्जीनियरी को तेजी से आगे बढाया है।

आज अग्रेजी तथा यूरोप की अन्य भाषाओ के साथ जिन अक-सकेतो का इस्तेमाल होता है उन्हें हम भ्रमवश अग्रेजी या रोमन अक कहते हैं। दरअसल ये भारतीय अक सकेत हैं। जो भारतीय अक-सकेत अरब देशो मे पहुचे थे उन्ही का यूरोप के देशो मे प्रचार हुआ। देखिए दसवी सदी की लटिन की एक पुस्तक म प्रयुक्त अक-सकेत

यूरोप मे भारतीय अक (दसवीं सदी)

ये अक-सकेत अरब देशो म अपनाये गये उन गुबार अको स मिलत हैं जो भारत से अरब देशो मे पहुचे थे। हमारे देश म जब नई अक-पद्धति का आविष्कार हुआ तो 1 से 9 तक के पुराने अक सकेतो को कायम रखा गया और नए अक-सकेत छोड दिए गए। बाद म यही अक-सकेत अरब देशो म और यूरोप म पहुच। अत यूरोप मे जो अक सकेत पहुचे उनका विकास ब्राह्मी के अक सकेतो

से हुआ है।

दसवीं सदी के बाद यूरोप के देशों में इन भारतीय अंक-संकेतों का विकास किस प्रकार हुआ यह नीचे के चित्र से जाना जा सकता है

1 2 3 4 5 6 7 8 9 0

12वीं सदी

1197 ई०

1275 ई०

1294 ई०

1303 ई०

1360 ई०

1442 ई०

यूरोप में 12वीं से 15वीं सदी तक भारतीय अंकों का विकास

पंद्रहवीं सदी में जब यूरोप में पुस्तकें छपने लगीं और अंकों के टाइप बने तो इन अंक-संकेतों को वर्तमान स्थायी रूप मिला। इस प्रकार 1 2, 3, 4, 5 6, 7 8, 9, 0 अंक-संकेत मूलतः भारतीय अंक संकेत हैं। इसीलिए आज हम इन्हें भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय अंक कहते हैं। यूरोप ने न केवल भारतीय अंक-पद्धति को अपनाया बल्कि भारतीय अंक-संकेतों को भी अपनाया है।

ज्योतिष और गणित का विकास

वदिक काल मे विनान पर विचार करते समय हमने देखा है कि वेदागा के रूप म गणित व ज्योतिष न कितनी उनति की थी। हमन वेदाग ज्योतिष और शुल्वसूत्रा क रेखागणित नान के बारे म जानकारी प्राप्त की है। हमन यह भी देखा है कि उस समय तक गणित तथा ज्योतिष अपने को धम कम स जुदा नही कर पाया था।

फिर 499 ई० म लिखा हुआ गणित व ज्योतिष का हम एक एसा ग्रथ देखत हैं जो इन विषया का एक शुद्ध वनानिक ग्रथ है। यह है आयभट द्वारा रचित आयभटीयम ग्रथ। आयभटीय म गणित व ज्योतिष दोना ही विषया का विवेचन है। आगे भी हम देखत हैं कि हमारे देश म गणित व ज्योतिष का अध्ययन साथ साथ होता रहा है। ज्योतिष क अध्ययन मे गणित की जरूरत होती है इसलिए हमारे देश के गणित ज्योतिषिया ने इन दोना विषया का प्रतिपादन प्राय एक ही ग्रथ म किया है।

आयभट क बाद हमारे दश म गणित व ज्योतिष के वज्ञानिक अध्ययन की *स्वस्थ परम्परा शुरू होती है। आयभट के बाद हमारे देश म वराहमिहिर* ब्रह्मगुप्त, महावीराचाय श्रीधर भास्कराचाय आदि महान गणित ज्योतिषी हुए। इस प्रकरण म हम मुख्यत इन्ही वज्ञानिका के बारे म जानकारी प्राप्त करनी है। परन्तु पहल इस काल के वज्ञानिक विकास की पृष्ठभूमि को समझ लेना जरूरी है।

पिछले प्रकरण म हमने देखा है कि सिकन्दर के पहले ही ईरान के माध्यम से हमारा देश यूनानिया के सम्पक मे आ गया था। सिकन्दर के हमले के बाद हमारा देश यूनानियो क और भी अधिक निकट सम्पक म आया। दोना ओर से नान विनान का आदान प्रदान हुआ। फिर हमारे देश म शक आए पाथव आए कुषाण आए। य सब लोग भारतीय संस्कृति में घुल मिल गए। इनके सहयोग से भारतीय नान विनान को नई दिशा मिली। भारतीय विज्ञान की उनति का श्रेय किसी एक कौम को देना उचित नही है।

इसी प्रकार, ज्ञान विज्ञान की उन्नति का श्रेय सिर्फ एक ही धर्म के अनुयायियों को नहीं दिया जा सकता। पिछले प्रकरण में हमने देखा है कि आयुर्वेद के विकास में बौद्धों ने खूब योग दिया है। जीवक, नागार्जुन वाग्भट आदि आयुर्वेदाचार्य बौद्ध थे। विदेशों में आयुर्वेद का प्रचार करने में भी बौद्धों का बड़ा हाथ है। यही बात अन्य विषयों के बारे में भी कही जा सकती है। गणित जैन आचार्यों का प्रिय विषय रहा है। प्रस्तुत प्रकरण में हम देखेंगे कि कई जैनाचार्य महान गणितज्ञ हुए हैं।

भारतीय विज्ञान के विकास के अध्ययन में अनेक कठिनाइयाँ हैं। बहुत से ग्रन्थ नष्ट हो गए हैं। उदाहरणार्थ वेदांग ज्योतिष और आर्यभट के बीच में लगभग एक हजार साल का अन्तर है। आज हमें ज्योतिष या गणित का ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं मिलता जो इस कालान्तर में लिखा गया हो। लेकिन विविध उल्लेखों से हमें जानकारी मिलती है कि इस काल में अनेक ग्रन्थ रचे गए होंगे।

छठी सदी के महान ज्योतिषी वराहमिहिर के पंचसिद्धान्तिका ग्रन्थ से स्पष्ट जानकारी मिलती है कि ईसा से एक दो सदी पहले और एक-दो सदी बाद हमारे देश में ज्योतिष के कई सिद्धान्त-ग्रन्थों की रचना हुई थी। पंचसिद्धान्तिका में वराह ने पुराने पाँच सिद्धान्तों की जानकारी दी है। ये पाँच सिद्धान्त हैं— पौलिश रोमक वसिष्ठ सौर और पैतामह। इनमें वसिष्ठ और पितामह के सिद्धान्त अधिक प्राचीन थे। पौलिश और रोमक सिद्धान्तों की रचना यूनानी ज्योतिष ज्ञान के प्रभाव के अन्तर्गत हुई थी।

लेकिन ज्योतिष के ये पुराने सिद्धान्त-ग्रन्थ आज नहीं मिलते। आज जो सिद्धान्त-ग्रन्थ मिलते हैं वे सब वराहमिहिर के बाद के रचे हुए हैं। पुराने जमाने में हमारे देश में इतिहास लिखने की परम्परा ही नहीं रही है। ग्यारहवीं सदी के मध्य एशिया के महापण्डित अल-बेरूनी ने जिस प्रकार अपने ग्रन्थ में भारतीय ज्ञान विज्ञान की ऐतिहासिक जानकारी दी है, वैसी ठोस जानकारी किसी भी भारतीय ग्रन्थ में नहीं मिलती।

और एक बात। पुराने जमाने के भारतीय पण्डितों ने अपने बारे में जानकारी देने में बड़ी कंजूसी की है। हमारे यहाँ काल्पनिक देवी-देवताओं के बारे में तो बहुत सारी कथाएँ गढ़ी गई, पुराण लिखे गए, किन्तु विद्वानों की जीवनियाँ नहीं लिखी गई। इसलिए हमारे महान वैज्ञानिकों के जीवन के बारे में हमें ठोस जानकारी नहीं मिलती। हाँ, ज्योतिष के कई ग्रन्थों में यह जानकारी मिल जाती है कि वह ग्रन्थ किस साल रचा गया। यह इसलिए कि ज्योतिषियों

को एक निश्चित तिथि से गणनाएं आरम्भ करनी पड़ती थी इसलिए उनके ग्रंथों में हमें गणितारम्भ की तिथि मिल जाती है।

हम जानते हैं कि आर्यभट के पहले हमारे देश में शून्य पर आधारित दशमिक अंक पद्धति की खोज हो चुकी थी और इसकी जानकारी हम पिछले प्रकरण में दे चुके हैं। **बख्शाली हस्तलिपि** जिसकी चर्चा हमने पिछले प्रकरण में की है सम्भवतः आर्यभट से पहले की रचना है किन्तु निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इसलिए अब हम आर्यभट से ही ज्योतिष व गणित के विकास के सिलसिले को शुरू करते हैं।

आर्यभट

आर्यभट की केवल एक पुस्तक मिलती है—**आर्यभटीय**। उन्होंने और पुस्तकों की भी रचना की होगी पर वे आज नहीं मिलतीं। आर्यभटीय के एक श्लोक में आर्यभट जानकारी देते हैं कि उन्होंने इस पुस्तक की रचना कुसुमपुर में की है और उस समय उनकी आयु 23 साल की थी। वे लिखते हैं—कलियुग के 3600 वर्ष बीत चुके हैं और मेरी आयु 23 साल की है जब कि मैं यह ग्रंथ लिख रहा हूं।

भारतीय ज्योतिष की परम्परा के अनुसार **कलियुग** का आरम्भ ईसा पूर्व 3101 में हुआ था। इस हिसाब से 499 ई० में **आर्यभटीय** की रचना हुई। अतः आर्यभट का जन्म 476 ई० में हुआ।

आधुनिक पटना शहर का पुराना नाम पाटलिपुत्र था। उसे पुष्पपुर और सम्भवतः कुसुमपुर भी कहते थे। अतः अनेक विद्वानों का मत है कि आर्यभट का कुसुमपुर आधुनिक पटना ही है। पर कई विद्वान इस मत को स्वीकार नहीं करते। आर्यभट के ग्रंथ का दक्षिण भारत में अधिक प्रचार रहा है और इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियां मलयालम लिपि में मिली हैं। इसलिए संभव यही जान पड़ता है कि आर्यभट कर्नाटक या केरल के निवासी रहे होंगे।

बस आर्यभट के जीवन के बारे में इससे अधिक जानकारी हमें नहीं मिलती।

आर्यभटीय बहुत छोटा ग्रंथ है। मंगलाचरण के अलावा इसमें कुल मिलाकर 118 श्लोक हैं। लेकिन इतने में ही आर्यभट ने गणित व ज्योतिष के प्रमुख विषयों का समावेश कर लिया है मानो गागर में सागर भर दिया हो। ग्रंथ को चार भागों में बांटा गया है। आरम्भ के दस श्लोक **दशगीतिक** कहलाते हैं। शेष 108 श्लोक आर्या छंद में हैं इसलिए **आर्याष्टशतम्** कहलाते हैं।

इसके तीन भाग हैं—गणित, कालक्रिया और गोल।

गणित व ज्योतिष में बड़ी-बड़ी सख्याओ की जरूरत पड़ती है। सख्याओ का अक सकेतो में लिखा जा सकता है और शब्दो म भी। लेकिन पद्य में अक-सकेता को लिखना सभव नही। पद्य में केवल शब्दो का ही लिखा जा सकता है। हमारे देश में गणित व ज्योतिष के ग्रथ पद्य में लिखे गए हैं, इसलिए सख्याओ को शब्दो में लिखने की अनेक शब्दाक पद्धतियाँ अस्तित्व म आइ। जस, हमारे शरीर में दो हाथ, दो आँख, दो कान आदि हैं इसलिए हस्त कण या चक्षु शब्दो से 2 का बोध होता था। इसी प्रकार वद युग इत्यादि शब्दो स 4 का और ऋतु, रस आदि शब्दो से 6 का बोध होता था। उदाहरणाथ, ख-लोक-कण-चद्र शब्द समूह का अथ होगा 1230। शब्दाको का क्रम उलटा रहता था अर्थात शब्दाको की शुरुआत इकाई से होती थी।

आयभट ने एक नई अक पद्धति खोज निकाली। उन्होंने शब्दो क झमेले में न पडकर वणमाला के अक्षरा को सख्याओ क मान दिए। इस प्रकार उन्होने एक अक्षराक पद्धति को जन्म दिया। इस पद्धति क अनुसार, उन्होने क से म तक क 25 वर्णाक्षरा (व्यजना) को क्रमश 1 से 25 तक सख्यामान दिए। आगे य=30, र=40 ल=50, व=60 श=70 ष=80 स=90 ह=100। और स्वराक्षरा को उन्होने शतगुणोत्तर मान दिए, जस अ=1, इ=100, उ=10 00 ऋ=10 00 000, इत्यादि।

इस प्रकार किसी भी सख्या को अक्षरा की योजना में व्यक्त करना सभव हुआ। उदाहरणाथ, आयभट ने एक महायुग (चार युग) म सूय के भगणा की सख्या ख्युघृ दी है। उपयुक्त अक्षराक पद्धति के अनुसार 'ख्युघृ' का अथ होगा 43 20 000।

क्योकि

खु=ख + उ= 2 ×	10 000=	20 000
यु=य + उ= 30 ×	10 000=	3 00 000
घृ=घ + ऋ= 4 ×	10 00 000=	40,00 000
ख्युघृ		=43,20 000

इस अक्षराक पद्धति म शब्द छोटे बनते हैं लेकिन इसके प्रयोग में अनेक कठिनाइया हैं। कुछ शब्दो का तो उच्चारण ही नही किया जा सकता। इसलिए बाद क गणितज्ञो न आयभट की इस अक्षराक पद्धति का न अपनाकर नई नई अक्षराक पद्धतिया को जन्म दिया।

यूनानी लोगो के पास स्वतत्र अक-सकेत नही थ। व अपनी वणमाला के अक्षरा स ही सख्याओ को व्यक्त करते थे। अत यह सभव है कि आयभट का

इस अक्षरांक पद्धति को जन्म देने की प्रेरणा यूनानी अक्षरांक पद्धति से मिली हो। जो भी हो भारत में आयभट सभवत पहले गणितज्ञ थे जिन्होंने एक अक्षरांक पद्धति को जन्म दिया। अपने ग्रन्थ के आरम्भ में केवल एक श्लोक में ही उन्होंने इस अक्षरांक पद्धति के सारे नियम स्पष्ट कर दिए हैं।

आयभटीय के गणितपाद में, मगलाचरण के अलावा केवल 32 श्लोक हैं। परन्तु इतने ही श्लोकों में आयभट ने अकगणित, रेखागणित त्रिकोणमिति तथा बीजगणित के अनेक नियम लिख दिए हैं। इस पुस्तक के प्रथम प्रकरण म हमने बताया है कि किस प्रकार आधुनिक त्रिकोणमिति का साइन् शब्द सस्कृत के जीवा शब्द से बना है। विषय कुछ कठिन होने स यहा त्रिकोणमिति के बारे में हम अधिक नही बता सकते। इतना ही जानना पर्याप्त होगा कि आधुनिक त्रिकोणमिति आयभट द्वारा खोजी गई विधियों पर आधारित है।

वृत्त की परिधि तथा इसके व्यास के अनुपात को आज हम π से व्यक्त करते हैं। हम यह भी जानते हैं कि इस अनुपात का सही-सही मान प्राप्त नही हो सकता। इसीलिए हम इसका सन्निकट मान लेते हैं $\frac{22}{7}$ या 3 1416। पुराने जमाने के गणितज्ञ π का सूक्ष्म मान नही जानते थे, परन्तु आयभट ने गणितपाद के एक श्लोक म वृत्त की परिधि तथा इसके व्यास के अनुपात का मान दिया है। इसके अनुसार, $\frac{62832}{20000}=3\ 1416$।

बीजगणित में समीकरणो को हल करना पडता है। एक विशेष प्रकार के समीकरण को कुट्टक कहा जाता था। आयभट न ऐसे समीकरणो को हल करने की विधि दी है। गणितशास्त्र को आयभट की यह एक महान दन है। कुट्टक शब्द सभवत कन्नड भाषा की 'कुटटु' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है कूटना। बार बार भाग देकर ये समीकरण हल किए जाते थ, इसीलिए इन्हे कुट्टक नाम दिया गया। बाद में ब्रह्मगुप्त आदि गणितज्ञो न इस कुट्टक गणित को आगे बढाया। बाद के एक टीकाकार ने आयभट को कुट्टका चार्य कहा है।

प्राचीन काल में पृथ्वी को स्थिर माना जाता था। पर आयभट ने कहा कि पृथ्वी गोल (भूगोल) है और यह अपने अक्ष पर घूमती है, यानी इसकी दैनन्दिन गति है। ऐसा कहने वाले हमारे देश के एकमात्र ज्योतिषी आयभट ही थे। आज हम जानते हैं कि आयभट का कथन सही है। परन्तु आयभट न यह

नहीं कहा था कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है।

आर्यभट ग्रहणों के असली कारण को जानते थे। उन्होंने स्पष्ट लिखा है चन्द्र जब सूर्य को ढक लेता है और इसकी छाया पृथ्वी पर पड़ती है तो सूर्य ग्रहण होता है। इसी प्रकार पृथ्वी की छाया जब चन्द्र को ढक लेती है तो चन्द्र ग्रहण घटित होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यभट ने गणित-ज्योतिष के अध्ययन की एक स्वस्थ परम्परा को जन्म दिया। आर्यभटीय भारतीय विज्ञान की एक महान कृति है। आर्यभट के समय में हमारा देश गणित ज्योतिष के क्षेत्र में किसी भी अन्य देश से पीछे नहीं था। आधुनिक त्रिकोणमिति तथा बीजगणित की कई विधियों की खोज आर्यभट ने की थी। उनका आर्यभटीय ग्रन्थ एक वैज्ञानिक ग्रन्थ है।

आर्यभट नाम के एक और ज्योतिषी हुए है। उनका समय ईसा की दसवीं सदी है। उनका आर्यसिद्धान्त नामक एक ग्रन्थ भी मिलता है परन्तु वे पहले आर्यभट जैसे प्रसिद्ध नहीं हैं।

वराहमिहिर

प्रथम आर्यभट के बाद हमारे देश में वराहमिहिर एक प्रख्यात ज्योतिषी हुए। वराह को आर्यभट की कोटि का वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता फिर भी हमारे देश में वराह को ही सबसे अधिक प्रसिद्धि मिली है। इसके कुछ कारण हैं।

वराह बहुत बड़े पंडित थे। उन्होंने छोटे-बड़े अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनका पठन-पाठन होता रहा। उनके कुछ छोटे ग्रन्थ, जो उनके बड़े ग्रन्थों के लघु संस्करण हैं खूब प्रसिद्ध हुए और आज भी पढ़े जाते हैं। वराह के ग्रन्थ बहुतों की जीविका के साधन बन गये। फलित-ज्योतिषी आज भी वराह के ग्रन्थों का उपयोग करते हैं। आर्यभट का ग्रन्थ शुद्ध गणित-ज्योतिष का ग्रन्थ होने पर भी आज के संदर्भ में उसके पठन-पाठन की कोई उपयोगिता नहीं रह गई है। परन्तु वराह के ग्रन्थ मुख्यत फलित-ज्योतिष से सम्बन्धित हैं इसलिए आज के फलित-ज्योतिषियों को उन्हें पढ़ना पड़ता है।

वराह की प्रसिद्धि का एक और कारण है। बहुत बाद में किसी पंडित ने महाकवि कालिदास के नाम से 'ज्योतिर्विदाभरण' नाम से एक जाली पोथी लिखी। इस पोथी के एक श्लोक में उसने लिखा कि धन्वन्तरि, अमरसिंह, कालिदास, वराहमिहिर आदि विद्वान 'विक्रमादित्य' के दरबार के नवरत्न थे।

इस श्लोक को खूब प्रसिद्धि मिली। लेकिन आज हम जानते हैं कि ये सभी विद्वान एक समय में नहीं हुए।

वराहमिहिर के जीवन के बारे में हमें ठोस जानकारी नहीं मिलती। 'वराह' शब्द का अर्थ है सूअर और 'मिहिर' शब्द प्राचीन ईरानी भाषा के मिथ्र (सूर्य देवता) शब्द से बना है। वराह सूर्य के भक्त थे। उनके प्रायः सभी ग्रन्थों के मंगलाचरणों में सूर्य की स्तुति है। उनके पिता का नाम आदित्यदास था और सम्भवतः वे ही उनके गुरु थे।

हमने बताया है कि करीब दो हजार साल पहले इस देश में बड़ी संख्या में शक, पार्थव आदि लोग आए थे। इनका पहला पड़ाव सिंध प्रान्त में रहा। पुराने साहित्य में उस प्रदेश के लिए 'शकद्वीप' नाम मिलता है। इन शकों ने भारत में सूर्यपूजा को बढ़ावा दिया। सूर्य की मूर्तियाँ बनीं, बहुत सारे मंदिर बने। मग कुल के ब्राह्मणों का सूर्य की पूजा से विशेष सम्बन्ध था। वराहमिहिर मग ब्राह्मणों के कुल में ही पैदा हुए थे। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि वराहमिहिर भारत में आकर बसी हुई किसी विदेशी कौम से सम्बन्धित थे।

वराह के एक ग्रन्थ से जानकारी मिलती है कि वे अवन्ती (उज्जयिनी) के निवासी थे और कापित्थक गाँव के सूर्य का उन्हें वर प्रसाद मिला था। स्वयं वराह ने अपने को 'आवन्त्यक' कहा है और उनके ग्रन्थों के प्रख्यात टीकाकार उत्पल ने उन्हें 'आवन्तिकाचार्य' कहा है। अतः कापित्थक गाँव उज्जयिनी के आसपास ही रहा होगा।

वराह ने अपनी जन्मतिथि के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं दी है। उनके 'पंचसिद्धान्तिका' ग्रन्थ में सिर्फ इतनी जानकारी मिलती है कि उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना शक-काल 427 में की थी। शक-सम्वत में 78 वर्ष जोड़ने से ईसवी सन् प्राप्त होता है। अतः हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि वराह ने इस ग्रन्थ की रचना 505 ई० में की थी। बाद के एक उल्लेख से जानकारी मिलती है कि वराह की मृत्यु 587 ई० में हुई थी। पंचसिद्धान्तिका ग्रन्थ की रचना के समय वराह की आयु कम से कम बीस साल अवश्य रही होगी। इससे परिणाम निकलता है कि वराह सौ से अधिक साल जीवित रहे। परन्तु अनेक विद्वान वराह की इस मृत्यु तिथि में यकीन नहीं करते।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आर्यभट और वराह का समय लगभग एक ही है। 500 ई० के आसपास ये दोनों ज्योतिषी अपनी तरुणावस्था में थे। वराह ने अपने ग्रन्थ में आर्यभट का उल्लेख किया है।

पुराने जमाने म ज्योतिषशास्त्र के तीन अग (स्कन्द) मान गए थे—तन्त्र (गणित-ज्योतिष), होरा (जन्मकुडली, विवाह, यात्रा आदि से सम्बन्धित फलित ज्योतिष) और सहिता (दनन्दिन जीवन स सम्बधित फलित-ज्योतिष)। वराह स्वय जानकारी देत हैं कि उन्हाने ज्योतिष की इन तीनो शाखाओ पर ग्रन्थ रचे हैं।

वराह के पचसिद्धान्तिका ग्रन्थ की जानकारी हम पहले दे चुके हैं। यह ज्योतिष की तन्त्र शाखा का ग्रन्थ है। भारतीय विज्ञान के इतिहास की दृष्टि स वराह का यह ग्रन्थ विशेष महत्त्व का है। वराह के पहले हमारे देश म ज्योतिष के जिन पाँच सिद्धान्ता की रचना हुई थी, उनके बारे म केवल इसी ग्रन्थ म जानकारी मिलती है। वराह के इस ग्रन्थ को आधुनिक काल के पडिता न बडी कठिनाई से खाज निकाला है।

वराह के होरा शाखा के ग्रन्थ हैं बहज्जातक, बृहद्विवाहपटल और बहद यात्रा। इनके लघु सस्करण हैं लघुजातक, स्वल्पविवाहपटल और स्वल्पयात्रा। इनमे बहज्जातक और लघुजातक ग्रन्थ खूब प्रसिद्ध हुए और फलित-ज्योतिषी आज भी इनका इस्तेमाल करते हैं।

वराह का लिखा हुआ सहिता शाखा का प्रख्यात ग्रन्थ है बहत्सहिता। इसे वाराही सहिता भी कहते हैं। इस ग्रन्थ म उचित अनुचित तथा शुभ अशुभ व्यवहारा का विस्तृत विवेचन है जिनम ढेर सारे परम्परागत अन्धविश्वासा का भी समावश है। फिर भी यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्व का है। इस ग्रन्थ मे वराह ने स्थापत्य मूर्तिकला तत्कालीन भारत के भूगोल और सामाजिक आर्थिक एव धार्मिक जीवन के बारे मे विस्तत जानकारी दी है। इस दष्टि से वराह का यह ग्रन्थ एक प्रकार का महाकोश ही है।

बहत्सहिता तथा वराह के कुछ अन्य ग्रन्थो के प्रख्यात टीकाकार हैं उत्पल (भटोत्पल)। इनका समय ईसा की दसवी सदी है और ये सम्भवत कश्मीर के निवासी थे। उत्पल बहुत बडे पडित थे। पुराने ग्रन्थो का उन्हाने गहन अध्ययन किया था। इसीलिए बहत्सहिता की टीका म उन्हाने पुराने ग्रन्थो से बहुत सारे उद्धरण दिए हैं, जिससे इस ग्रन्थ का महत्त्व और अधिक बढ गया है।

अल्बेरूनी की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। व सस्कृत भाषा और ज्योतिष शास्त्र के पडित थे। अल्बरूनी ने वराह क बहत्सहिता तथा लघुजातक ग्रन्था का अरबी मे अनुवाद किया था परन्तु आज य अनुवाद उपलब्ध नहा हैं।

ब्रह्मगुप्त

ब्रह्मगुप्त के दो ग्रन्थ मिलते है—ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त और खण्डखाद्य।

ब्राह्मस्फुट सिद्धात के एक श्लोक म ब्रह्मगुप्त जानकारी देत हैं कि उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना शक-सम्वत 550 (628 ई०) मे की है और उस समय उनकी आयु 30 साल की थी। अर्थात ब्रह्मगुप्त का जन्म 598 ई० मे हुआ था।

ब्रह्मगुप्त के पिता का नाम जिष्णु था और वे भिनमाल के निवासी थ। यह भिनमाल या भिल्लमाल नगरी उस समय गुजरात की राजधानी थी। ब्रह्मगुप्त क समय में वहाँ चापवश के किसी व्याघ्रमुख राजा का शासन था। ब्रह्मगुप्त को 'भिल्लमालकाचाय' भी कहा गया है।

ब्रह्मगुप्त के पहले 'ब्रह्मसिद्धात' क नाम से ज्योतिष के कुछ ग्रन्थो की रचना हुई थी। ब्रह्मगुप्त ने अपना ग्रन्थ उसी परम्परा में लिखा है। स्फुट शब्द का अथ होता है फला हुआ या 'विस्तत। इसलिए 'ब्राह्मस्फुट सिद्धात' का अथ होगा 'विस्तत ब्रह्मसिद्धान्त।

ब्राह्मस्फुट सिद्धात गणित ज्योतिष का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल 24 अध्याय हैं। आरम्भ के दस अध्यायो म ज्योतिष से सम्बन्धित जानकारी है और शप अध्याया में गणित एव अन्य बाता की जानकारी है।

ज्योतिष के मामले में ब्रह्मगुप्त ने दूसरा का अन्धानुकरण नही किया है। इससे पता चलता है कि उन्हाने आकाश की ज्योतियो की गतिया का स्वय अध्ययन किया था, अर्थात वे एक कुशल वेधकत्ता थे। ब्रह्मगुप्त ने ज्योतिष के कुछ यन्त्रा के बारे में भी जानकारी दी है।

ब्रह्मगुप्त उच्चकोटि के गणितज्ञ थे। अपने ग्रन्थ क बारहवें अध्याय में उन्होंने अकगणित व क्षेत्रफल क विषय दिए है। अठारहवें अध्याय का नाम कुट्टकाध्याय है। पहले हम बता चुके हैं कि कुट्टक का अथ है, विशेप प्रकार के समीकरणा को हल करना। अत व्यापक रूप से कुट्टक का अथ होगा—बीजगणित। ब्रह्मगुप्त या उनक पहले के गणितज्ञो ने बीजगणित शब्द का इस्तमाल नही किया है।

ब्रह्मगुप्त ने न केवल बीजगणित (कुट्टक) से सम्बन्धित अनेक बाता की जानकारी दी है बल्कि ज्योतिष से सम्बन्धित सवाला को हल करने के लिए उन्होंने बीजगणित की विधिया का व्यवहार भी किया है।

प्राचीन यूनान क गणितज्ञा ने रेखागणित क विकास को चरमोन्नति पर पहुचा दिया था परन्तु बीजगणित में वे उतन आग नही थे। बीजगणित के सवालों का वे रेखागणित की विधिया से हल करते। लेकिन भारतीय गणितना न त्रिकोणमिति तथा बीजगणित को खूब आगे बढाया। त्रिकोणमिति क विकास का श्रय आयभट को है तो बीजगणित के विकास का ब्रह्मगुप्त को।

ब्रह्मगुप्त के दूसरे ग्रन्थ का नाम खण्डखाद्य है। यह करण ग्रन्थ है। अर्थात इस ग्रन्थ में पंचांग बनाने की विधियों की जानकारी है। ब्रह्मगुप्त ने इस ग्रन्थ की रचना 665 ई० में की और उस समय उनकी आयु 67 साल की थी।

हम बता चुके हैं कि इस्लाम के उदय के बाद खलीफाओं के शासनकाल में बगदाद में एक विद्याकेन्द्र की स्थापना हुई थी। जानकारी मिलती है कि खलीफा अल-मंसूर के शासनकाल में, 770 ई० के आसपास, उज्जयिनी के कंक नामक एक पण्डित बगदाद पहुंचे थे और उन्होंने अरबों को भारतीय गणित एवं ज्योतिष के बारे में जानकारी दी थी। वे अपने साथ ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ ले गए थे। वहां खलीफा की आज्ञा से इन ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद हुआ।

अरब देशों में भारतीय गणित ज्योतिष के दो ग्रन्थ खूब प्रसिद्ध रहे। ये हैं—सिन्द हिन्द और अल-अरकन्द। आज ये ग्रन्थ नहीं मिलते। पर इतना निश्चित है कि ब्रह्मगुप्त के ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त का अरबी अनुवाद ही सिन्द हिन्द था और अल अरकन्द सम्भवतः उनके खण्डखाद्य का अनुवाद था। इन ग्रन्थों का उस समय अरबी में अनुवाद हुआ था, जब अभी अरबों को यूनानी ज्योतिष की जानकारी नहीं मिली थी अभी वे तालेमी (150 ई०) के ज्योतिष-ग्रन्थ से परिचित नहीं थे। इस प्रकार, ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थों के माध्यम से अरबों को पहली बार भारतीय ज्योतिष की जानकारी मिली।

हम बता चुके हैं कि अल्बेरूनी ने वराहमिहिर के दो ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद किया था। अल्बेरूनी ने ब्रह्मगुप्त के ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त का भी अनुवाद किया था और अपने भारत नामक ग्रन्थ में उन्होंने ब्रह्मगुप्त के बारे में जानकारी भी दी है। ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रन्थ में दूसरे ज्योतिषियों के दोष दिखाने के लिए एक स्वतन्त्र अध्याय—दूषणाध्याय—लिखा है। इसमें उन्होंने आर्यभट के भी दोष दिखाए हैं, जो वस्तुतः दोष नहीं हैं। जैसे, आर्यभट ने ग्रहणों के घटित होने के वैज्ञानिक कारण बतलाए हैं परन्तु ब्रह्मगुप्त राहु-केतु की कल्पना में भी विश्वास रखते थे। आर्यभट को दोष देने के लिए अल्बेरूनी ने ब्रह्मगुप्त की कटु आलोचना की है। वे लिखते हैं कि, ब्राह्मण पुरोहितों के दबदबे में आकर ब्रह्मगुप्त ने फिजूल ही आर्यभट की आलोचना की है।

हम पहले भी बता चुके हैं कि भारतीय विज्ञान के इतिहास में अल्बेरूनी के ग्रन्थ का बड़ा महत्व है। इसलिए उनके बारे में कुछ और बातें जान लेना उपयोगी होगा। अल्बेरूनी प्राचीन ख्वारेज्म (आधुनिक खीवा, उजबकिस्तान सोवियत संघ) के निवासी थे। उनका जन्म 973 ई० में हुआ था और मृत्यु 1048 ई० में। भारत पर हमला करके लूट मचाने वाले महमूद गजनी (997 1030 ई०)

ने ख्वारेज्म के राज्य को भी अपने साम्राज्य मे मिला लिया था। तरुण अल्बेरूनी बदी बनकर गजनी आए।

अल्बेरूनी और महमूद गजनी के सम्बध अच्छे नही थे। उनके समय के महाकवि फिरदौसी भी महमूद स रुष्ट थे। अल्बेरूनी ने भारत के बारे म

मध्य एशिया के प्रख्यात गणित-ज्योतिषी एव भारतविद अल्बेरूनी
(973 1048 ई०)
(चित्र सोवियत बाल विश्वकोश स साभार)

जानकारी प्राप्त करने के लिए सिंध मुलतान कश्मीर आदि प्रदेशो की यात्राएँ की। अत मे उन्होने भारत क बारे मे एक ग्रथ की रचना की। इस ग्रथ म तत्कालीन भारत के ज्ञान विज्ञान क बारे म जितनी जानकारी मिलती है उतनी अन्य किसी ग्रथ म नही मिलती। अल्बेरूनी अरब नही थ। उन्होने कट्टर हिंदुओ की, कट्टर अरबो की तथा महमूद की लूट खसोट की तीव्र आलोचना की है। अल्बेरूनी न भारतीय विद्या का काफी हद तक सही मूल्याकन किया है।

हमने देखा है कि ब्रह्मगुप्त क ग्रथो से अरबो को पहली बार भारतीय ज्योतिष की जानकारी मिली थी। आधुनिक यूरोप के विद्वानो को भी भारतीय

गणित एव ज्योतिष के बारे मे सबसे पहले ब्रह्मगुप्त और भास्कर के ग्रथो से ही जानकारी मिली है। कोलब्रुक महाशय ने 1817 ई० मे पहली बार ब्राह्म-स्फुट सिद्धात के अकगणित तथा बीजगणित से सम्बधित अध्यायो का अग्रेजी मे अनुवाद किया था। यूरोप के विद्वानो को प्राचीन भारत के विकसित गणित क बारे मे पहली बार जानकारी मिली। तदनतर यूरोप के अनेक सस्कृतन भारतीय गणित ज्योतिष के अध्ययन मे जुट गए।

बाद क भारतीय गणित ज्योतिषियो ने ब्रह्मगुप्त की खूब स्तुति की है। उनके ब्राह्मस्फुट सिद्धात पर पृथदक स्वामी (दसवी सदी) ने टीका लिखी। वरुण और भटोत्पल न खण्डखाद्य पर टीकाएँ लिखी। बारहवी सदी के महान गणितन भास्कराचाय ने ब्रह्मगुप्त को महामतिमान शास्त्रकार और गणकचक्र चूडामणि कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत म ब्रह्मगुप्त की बडी स्याति थी।

श्रीधर

ईसा की आठवी सदा म श्रीधराचाय नाम के एक गणितन हुए। उनका पाटीगणितसार नामक एक ग्रथ मिलता है। उस समय अकगणित को पाटी गणित कहत थ। श्रीधर का यह ग्रथ त्रिशतिका नाम से भी प्रसिद्ध है क्योकि इसमे 300 श्लोक हैं। यह मुख्यत अकगणित व क्षेत्रगणित का ग्रथ है।

श्रीधर के जीवन क बारे म हमे कोई ठोस जानकारी नहीं मिलती। श्रीधर नाम के एक यायाचाय भी हुए हैं। उनका यायकदली नामक ग्रथ मिलता है। यायाचाय श्रीधर दक्षिण भारत के निवासी थे। पर निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है कि यायाचाय श्रीधर और गणितज्ञ श्रीधर एक ही व्यक्ति थ।

महावीराचार्य

गणित जन मुनियो का प्रिय विषय रहा है। कारण यह है कि जनो क धार्मिक साहित्य म गणित को विशेष महत्त्व दिया गया है। जन साहित्य का एक उपाग ही है गणितानुयोग। जैनो के करणानुयोग साहित्य क अतगत सूय-प्रज्ञप्ति चद्र प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति जसे अनेक ग्रथो की रचना हुई जिनमे विश्व की सरचना के बारे म तरह तरह की कल्पनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। इस विवरण मे गणित की क्रियाओ का इस्तेमाल हुआ है।

प्राचीन जन साहित्य म गणित के अध्ययन को विशेष महत्त्व दिया गया ह।

जन मुनियो को जीविकोपाजन की चिंता नही रहती, इसलिए गणित के अध्ययन म वे अपना ध्यान केंद्रित कर सकते है। जन मुनियो ने अकगणित विषयत सख्याशास्त्र के विकास मे खूब योग दिया है। आज भी कई जन मुनियो को गणनाएँ करते हुए देखा जा सकता है। प्राचीन जन ग्रन्थो म बडी-बडी सख्याओ के उल्लेख भी मिलते हैं। यह दिमागी कसरत थी। आज भी कुछ जन मुनि अकगणित के 'चमत्कारो' से अपने अनुयायियो को प्रभावित करते रहते हैं।

ईसा की नौवी सदी म हमारे देश म महावीराचाय एक प्रसिद्ध गणितज्ञ हुए। वे राष्ट्रकूट राजा अमोघवष के आश्रित थे। ईसा की आठवी सदी म *महाराष्ट्र और आध्र तथा कनाटक के उत्तरी प्रदेशो म राष्ट्रकूटो का राज्य* स्थापित हुआ था। अमोघवष (814—880 ई०) प्रख्यात राष्ट्रकूट राजा हुआ। वह स्वय विद्वान था और जन धम का अनुयायी। उसकी राजधानी मान्यखेट म थी। जन धम का उदय मगध (बिहार) म हुआ था परन्तु बाद म यह धम मगध से लुप्त हो गया और पश्चिम तथा दक्षिण भारत में खूब फला फूला। जनो ने कन्नड साहित्य की वृद्धि म बडा योग दिया है।

महावीराचाय का **गणितसार सग्रह** नामक एक ग्रन्थ मिलता है। यह ग्रन्थ एक प्रकार की पाठ्य-पुस्तक है और इसका विषय अकगणित है। इसमें बीजगणित के सवाल भी हैं। महावीर को आयभट या ब्रह्मगुप्त की कोटि का गणितज्ञ नही माना जा सकता पर उन्होंने गणित को शुद्ध एव व्यवस्थित विधि से प्रस्तुत किया है। गणितसार-सग्रह विशुद्ध गणित का ग्रन्थ है।

महावीराचाय ने गुणन की क्रिया के बडे रोचक उदाहरण दिए हैं। नीचे की गुणन क्रियाओ में जो सख्याए प्राप्त होती हैं उनम दायी व बायी ओर से अको का क्रम एक-सा है।

$$27994681 \times 441 = 12345654321,$$
$$333333666667 \times 33 = 11000011000011$$
$$142857143 \times 7 = 1000000001,$$
$$152207 \times 73 = 11111111, \text{ इत्यादि।}$$

इन गुणनफलो को महावीर ने बडे सुन्दर नाम दिए हैं, जो सक्षिप्त हैं। जसे 12345654321 को उन्होंने **एकादिषडन्तानि क्रमेण हीनानि** कहा है अर्थात ऐसी सख्या जो पहले 1 से 6 तक बढती है और फिर उसी क्रम से घटती है।

गणितसार-सग्रह में बीजगणित के भी उदाहरण मिलते है। वग समीकरण से सम्बन्धित उदाहरण भी है। अ³=अ (अ+ब) (अ—ब(+ब (अ—ब)

-l-व³ सूत्र भी मिलता है। महावीराचाय सम्भवत पहले गणितज्ञ हैं जिन्होंने क्रमचय व सचय के लिए एक व्यापक सूत्र दिया है।

प्राचीन यूनान के महान गणितज्ञ एपोलोनियस (लग० 262 170 ई० पू०) ने उस शाकव गणित (कॉनिक्स) को जन्म दिया था जिसमें दीघवृत्त परवलय आदि वक्रो का अध्ययन किया जाता है। यूरोप के महान गणित ज्योतिषी केपलर (1571 1630 ई०) ने ग्रहो की गतियो को निर्धारित करने में इन वक्रो का उपयोग किया।

हमारे देश में महावीराचाय एकमात्र गणितज्ञ हैं जिन्होंने सक्षेप म दीघवत्त की चर्चा की है। दीघवृत्त को उन्होंने आयतवत्त कहा है और इसके क्षेत्रफल के लिए एक सूत्र भी दिया है, जो अशुद्ध है।

महावीराचाय विशुद्ध गणित के प्रेमी थे। हमारे देश में ज्योतिष व गणित का अध्ययन साथ साथ होता रहा है और प्राय एक ही ग्रन्थ में इन दोना विषयो का विवचन हुआ है। किन्तु महावीराचार्य का **गणितसार-सग्रह** शुद्ध गणित का ग्रन्थ है। इस दृष्टि से भारतीय विज्ञान के इतिहास में इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व है।

भास्कराचाय

भारतीय गणित की जिस पुस्तक को सबसे अधिक प्रसिद्धि मिली, वह है भास्कर की *लीलावती*। बडे बूढो को अब भी यह कहते सुना जा सकता है कि, जिसने *लीलावती* पढी है वह पेडो की पत्तिया तक गिन सकता है! इस किंवदन्ती में कोई सचाई नही है पर इससे पता चलता है कि भास्कर की *लीलावती* की ख्याति बहुत फल गई थी। इस पुस्तक पर दजनो टीकाएँ लिखी गइ और अकबरी दरबार के एक रत्न फजी ने 1587 ई० में *लीलावती* का फारसी भाषा में अनुवाद किया था।

लीलावती वस्तुत स्वतन्त्र पुस्तक नही है। यह भास्कराचाय के बडे ग्रन्थ **सिद्धान्तशिरोमणि** का एक खण्ड है। सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ के चार खण्ड हैं—लीलावती (पाटीगणित), बीजगणित, गोलाध्याय और ग्रहगणित। सिद्धान्त शिरोमणि के अलावा भास्कर का एक और ग्रन्थ मिलता है—**करणकुतूहल**।

भास्कराचाय ने गोलाध्याय के तीन चार श्लोको में अपने बारे में थोडी जानकारी दी है। उनका जन्म शक-सम्वत 1036 (1114 ई०) में हुआ था और 36 साल की आयु में उन्होंने सिद्धान्तशिरोमणि की रचना की। अर्थात इस ग्रन्थ की रचना 1150 ई० में हुई। करणकुतूहल की रचना उन्होंने 69 वर्ष

की आयु में 1183 ई० में की। भास्कर की मृत्यु किस साल हुई, इसके बारे में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती।

भास्कर स्वय जानकारी देते हैं कि सह्याद्रि पर्वत (महाराष्ट्र) के अचल का विज्जडविड गाव उनका निवास स्थान है। यह विज्जडविड गाँव ठीक किस स्थान पर था इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। कई विद्वानों ने पाटण बिजापुर, वेदर, बीड आदि आधुनिक स्थानों से विज्जडविड का साम्य दर्शाया है।

खानदेश (महाराष्ट्र) के चालीसगाव शहर से करीब सोलह किलोमीटर दूर सातमाला पहाडी की तलहटी में बसा हुआ पाटण आज एक छोटा सा गाँव है। पर प्राचीन काल में यह एक सम्पन्न शहर था। पास ही पित्तलखोर की प्रसिद्ध गुफाएँ हैं। पाटण के देवी के मंदिर के खडहर से एक शिलालेख मिला है। यह शिलालेख 1207 ई० का है। इस शिलालेख में उल्लेख है कि देवगिरि के यादव राजा सिंघण के माडलिक सोइदेव ने पाटण में मठ बनाने के लिए भास्कराचार्य के पौत्र चगदेव को दान दिया था। भास्कर के ग्रन्थों के अध्ययन के लिए इस मठ की स्थापना की गई थी।

पाटण के उपयुक्त शिलालेख में भास्कर के कुछ पूर्वजों के नाम दिए गए है। भास्कर के छ पीढी पहले के त्रिविक्रम कवि थे। भास्कर के पिता महेश्वर प्रसिद्ध ज्योतिषी थे और उन्ही से भास्कर ने ज्ञान प्राप्त किया था। भास्कर के पुत्र लक्ष्मीधर और पौत्र चगदेव भी ज्योतिषी थे। शिलालेख से जानकारी मिलती है कि लक्ष्मीधर व चगदेव देवगिरि के यादव राजाओं के राज ज्योतिषी थे। लेकिन स्वय भास्कर राज-ज्योतिषी थे या नहीं, इसके बारे में हमें कोई जानकारी नही मिलती।

भास्कर की लीलावती मुख्यत अकगणित की पाठ्य पुस्तक है। इसमें क्षेत्र-मिति तथा बीजगणित (कुट्टक) के भी कुछ विषय हैं। लीलावती के कुट्टका ध्याय' को लगभग उसी रूप में पुन बीजगणित में भी दोहराया गया है।

पुस्तक के लीलावती नामकरण के बारे में कई मत हैं। एक मत के अनुसार लीलावती भास्कर की पुत्री थी। फैजी ने लीलावती का फारसी में जो अनुवाद किया है, उसमें लीलावती के बारे में एक किस्सा है। कहते हैं कि लीलावती के ब्याह के लिए शुभ मुहूर्त नही निकल रहा था। भास्कर ने बडी कठिनाई से एक शुभ मुहूर्त खोज निकाला। लेकिन जल्घडी में कुछ गडबड होने से शुभ-मुहूर्त का समय निकल गया। सबको बडा दु ख हुआ। पिता ने पुत्री को समझाते हुए कहा—मैं तुम्हें गणित पढाऊँगा और जो पुस्तक लिखूगा उसे लीलावती

नाम दूगा।'

लगता है कि यह किस्सा मनगढत है। पुस्तक में लीलावती के लिए 'बाले क अलावा सखे' सम्बाधन भी मिलता है, इसलिए निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि लीलावती के साथ भास्कर का क्या रिश्ता था। यह भी सम्भव है कि यह नाम काल्पनिक हो। भास्कर के पहले भी कुछ विषया से सम्बधित पुस्तका के नाम लीलावती रखे गए थे, जसे, नेमिचद्र की व्याकरण की लीलावती पुस्तक।

जा भी हो यहाँ हमें भास्कर के ग्रथ के विषया से मतलब है। भास्कर ने अपन पहले के गणितनो से बहुत सी बातें ली हैं। पर उनके ग्रथ में कुछ नई बातें भी हैं, जो बडें महत्त्व की हैं।

आधुनिक गणित म शून्य तथा अनत से सम्बधित गणित का बडा महत्त्व है। यूराप में शूय व अनन्त से सम्बधित गणित का विकास पिछले तीन चार सौ साल में ही हुआ है। भारत में इस विषय पर सही दष्टि से विचार करने वाले पहले गणितन भास्कराचाय हैं। भास्कर जानते थे कि किसी भी सख्या का शूय से भाग देन पर उत्तर अनत आता है अथात $\frac{\text{अ}}{0}=\infty$। वे यह भी जानते थ कि अनन्त में बडी-से-बडी सख्या जोडी जाय या अनत म से बडी स-बडी सख्या घटाई जाय, ता भी वह सख्या अनन्त ही रहती है अर्थात $\infty+\text{अ}=\infty$ या $\infty-\text{अ}=\infty$।

आधुनिक गणित में कलन-गणित (काल्कुलस) अत्यत महत्त्व का विषय है। इसके दो प्रमुख भाग हैं—अवकलन-गणित (डिफरेंशियल काल्कुलस) और समाकलन-गणित (इटेग्रल काल्कुलस)। यूटन (1642 1727 ई०) और लाइब निटज (1646 1716 ई०) इस कलन गणित के सस्थापक माने जात हैं। वसे समाकलन गणित की थोडी-बहुत शुरुआत प्राचीन यूनान के महान वनानिक आर्किमिदीज (ईसा पूव तीसरी सदी) के समय से ही हो चुकी थी। क्षेत्रफल तथा आयतन के निधारण के लिए यूनानी गणितनो ने समाकलन की विधि का उपयोग किया था। गोल की सतह के क्षेत्रफल को नात करने के लिए भास्कर ने भी समाकलन की विधि का अपनाया है।

लकिन भास्कर की विशेषता यह है कि यूटन व लाइबनिटज के लगभग पाच सौ साल पहले अवकलन गणित का बीजारापण करने वाले वे ससार के पहले गणितज्ञ हैं। अवकलन गुणाक का उदाहरण दन वाले वे पहले गणितन हैं। किसी ग्रह की सूक्ष्म दैनन्दिन गति को निर्धारित करने के लिए उन्होने दिन

के समय को बहुत सारे क्षणा में विभाजित किया और इस प्रकार प्रत्यक क्षण के अ त (क्षणात) के साथ उ होने उस ग्रह की *स्थिति का सम्ब ध स्थापित* किया। इस विधि से प्राप्त ग्रह की गति को **तात्कालिक गति** का नाम दिया गया है।

इस प्रकार, हम देखते है कि भास्कर ने भारत म अवकलन गणित की नीव डाली थी। पर हम यह भी जानते हैं कि **सीमा** अथवा **सीमा त मूल्य** की धारणा इस गणित की आधारशिला है और इस धारणा का विकास यूटन व लाइबनिटज के बाद ही हुआ है। यह बडे खेद की बात है कि भास्कर क बाद उनकी कोटि का एसा कोई गणितज्ञ हमारे देश म नही हुआ जो गणित क इस महत्त्वपूण उपाग को आगे बढा सके।

महावीराचाय के सदभ म हम **क्रमचय** (पम्यूटेशन) व **सचय** (कबिनेशन) की चर्चा कर चुके हैं। जन गणितज्ञो ने इ हे क्रमश विकल्प व भग कहा है। *भास्कर ने इस विषय को अकपाश कहा है और इसस सम्बधित कुछ नये सूत्र* दिए हैं।

भारत म त्रिकोणमिति या गोलीय त्रिकोणमिति का विकास स्वत त्र रूप से नही बल्कि ज्योतिष के अध्ययन के साथ हुआ है। आयभट ने इस विषय का ठास आधारशिला पर खडा किया था। भास्कर ने सिद्धान्तशिरोमणि के गोला याय म त्रिकोणमिति क कई सूत्र दिए हैं।

भास्कर न लीलावती व बीजगणित म आरम्भिक गणित के प्राय सभी विषयो का विवेचन किया है। आज य विषय हाईस्कूल तक की कक्षाआ म पढाये जाते हैं।

गोलाध्याय व **ग्रहगणित** पुस्तका मे गणित-ज्योतिष से सम्बधित विषया की जानकारी है। प्राचीन काल क ज्योतिषियो को आकाशीय पिण्डा के भौतिक *गुणधर्मों का ज्ञान नही था, हो भी नही सकता था। वे केवल आकाशीय पिण्डो* की गति एव स्थिति का ही अवलोकन कर सकते थे और वह भी अपन चक्षुओ स। अभी दूरबीन की खोज नही हुइ थी।

पुराने जमाने के भारतीय ज्योतिषियो ने ग्रहो की सही स्थिति जानने के लिए और कालमापन के लिय कई प्रकार के सरल स यत्रो का इस्तमाल किया है। भास्कर ने सिद्धा तशिरोमणि के दो अध्यायो म ज्योतिष के यत्रा के बारे म विस्तृत जानकारी दी है। इनमे गोलयत्र, चक्रयन्त्र तुरीययन्त्र नाडीवलययन्त्र यष्टियन्त्र, घटिका आदि प्रमुख थे। य यन्त्र लकडी या धातु के बनते थे।

भास्कर न अपने सिद्धा तशिरोमणि ग्र थ पर स्वय **वासनाभाष्य** नामक

टीका लिखी है। बाद म उनके ग्रन्थ पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी। कोलब्रुक ने 1817 ई० म लीलावती व बीजगणित का अंग्रेजी मे अनुवाद किया। भास्कर की पुस्तकों के हिन्दी म भी अनुवाद हुए हैं।

भास्कर के बाद उनकी कोटि का गणित-ज्योतिषी हमारे देश म नही हुआ। भास्कर के समय तक हमारा देश गणित-ज्योतिष के अध्ययन मे किसी भी अन्य देश स पीछे नहीं था। उधर यूरोप म 12वी सदी के बाद विज्ञान तेजी स आगे बढ़ता गया। हमारे देश म इस बीच अनेक टीका ग्रन्थो की रचना हुई जिनम गणित व ज्योतिष से सम्बन्धित कुछ नई बातें भी है। फिर अठारहवी सदी के पूर्वार्ध म जयपुर के राजा सवाई जयसिंह ने बडी-बडी वेधशालाएँ खडी की। इन्ही सबके बारे मे हमे अब जानकारी प्राप्त करनी है।

भास्कराचार्य के बाद भारत मे गणित-ज्योतिष का अध्ययन

हमारे देश म लगभग 1200 ई० से दिल्ली के सुल्तानो का शासन शुरू हुआ। फिर देश के एक बडे भूभाग पर लम्बे समय तक मुगलो का शासन रहा। बहुत-से लोग इन इस्लामी शासको को 'विदेशी शासक' मानते हैं और अक्सर कहा जाता है कि इसी काल म हमारे देश म ज्ञान विज्ञान की अवनति हुई। यह एक अत्यन्त संकुचित और गलत धारणा है।

आज के भारत की कोई भी एक कौम या कोई भी एक धर्म इस बात का दावा नही कर सकते कि इस देश पर केवल उन्हीं का अधिकार है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। समय-समय पर इस देश म कई जातियो के लोग आए। जो लोग यहाँ बस गए उन्हें हम विदेशी नही कह सकते। आर्य लोग इस देश म बाहर स आए। उन्होने इस देश म अपनी भाषा और संस्कृति को फैलाया। क्या आर्य लोगो को हम विदेशी कहते हैं?

इस देश म यवन आए, पह्लव आए, शक आए और यहाँ के जन जीवन म घुल मिल गए। उन्हें हम विदेशी नहीं कह सकते। आज के भारत का कौन व्यक्ति आर्यों का वंशज है और कौन शको या पह्लवो या यवनो का वंशज है, यह जान पाना बिल्कुल असम्भव है।

भारत के इस्लामी शासक अरब नहीं थे। वे मध्य एशिया से आए थे। सुदूर अतीत म उनके पूर्वज आर्यों के भाई बन्द ही रहे होंगे। लेकिन अब वे इस्लाम म दीक्षित हो गए थे। भारत के सारे मुसलमान विदेश स नहीं आए। अधिकांश मुसलमान इसी देश के मूल निवासी हैं।

लेकिन देश के कई भागो मे राजगद्दी का धर्म बदला और राज-काज की

भाषाएँ बदली। संस्कृत जसी 'मृत भाषा' के स्थान पर अब अरबी व फारसी जसी जीवित भाषाओं को राज्याश्रय मिला। इसी रद्दोबदल के कारण कुछ लोग भ्रमवश ज्ञान विज्ञान की अवनति के दोष इस्लामी शासन के मत्थे मढ देते हैं। लेकिन खोजबीन करन पर पता चलता है कि भारत म ज्ञान विज्ञान की अवनति इस्लामी शासन के काफी पहले शुरू हो गई थी और उसके कारण दूसरे ही हैं।

ईसा की आरम्भिक सदियो म जब इस देश म यवन शक तथा कुषाण स्थायी रूप स बस जात है, उस समय से हमारे देश के विज्ञान का एक नया स्वस्थ दौर शुरू होता है। हमने देखा है कि *आयुर्वेद के चरक-संहिता व सुश्रुत संहिता* जसे संशोधित ग्रन्थो की रचना ईसा की आरम्भिक सदिया म हुई थी। लेकिन उसके बाद चिकित्सा के क्षेत्र म विशेष नया कुछ नही खोजा गया। सातवी आठवी सदी के वद्याचाय वाग्भट इस बात से झुझला उठे थे कि लोग नय ज्ञान को पसन्द नही करते और पुराने का राग आलापते रहत हैं।

ब्रह्मगुप्त की चर्चा करते समय हमन बताया है कि उन्होने *आयभट* की सही बातो को भी गलत कहा था। आयभट ने स्पष्ट कहा था कि काल्पनिक राहु-केतु द्वारा सूय चन्द्र को निगलने से ग्रहण नही होत। लेकिन ब्रह्मगुप्त न इसी अन्धविश्वास को अधिक महत्त्व दिया था। अल्बरूनी ने सच ही कहा है कि ब्राह्मण पुरोहितो के दबाव के कारण ब्रह्मगुप्त को एसा कहना पडा था। वराहमिहिर के ग्रन्थो ने गणित-ज्योतिष की अपेक्षा फलित-ज्योतिष का पल्डा अधिक भारी बना दिया।

दरअसल भारतीय ज्ञान विज्ञान की अवनति का मुख्य कारण है रूढि वादिता। गुप्तकाल म लिखे गय पुराणो ने ज्ञान विज्ञान की प्रगति को रोकने तथा रूढिवादिता को बढान का बडा काम किया है। भारतीय विज्ञान की बची खुची चतना पर प्रहार किया शकराचाय जसे मायावादी दाशनिको ने। इस भौतिक जगत की वास्तविकता को स्वीकार करके ही विज्ञान आगे बढ सकता है। इस विश्व को मायाजाल मान लेने पर फिर विश्व के भौतिक गुणधर्मों की खोजबीन करने की जरूरत ही क्या रह जाती है ?

सब बातो पर विचार करने से हम इस परिणाम पर पहुचत हैं कि शकराचाय क समय (लग० 800 ई०) से ही हमारे देश मे रूढिवादिता अधिक जोर पकडती है और ज्ञान विज्ञान की अवनति शुरू होती है। गणित व ज्योतिष के क्षेत्र म अपवाद हैं तो भास्कराचाय। अन्यथा, हमारे देश म नौवी सदी के बाद विज्ञान के किसी भी अग की विशेष उन्नति नही हुई।

लेकिन यह बात भी पूणत सही नही है कि इस्लामी शासनकाल म ज्ञान

विज्ञान की उन्नति हुई ही नही। हा, इस उन्नति के दर्शन हमे संस्कृत भाषा में अधिक नही होते, परन्तु इस युग मे अरबी और फारसी म विज्ञान से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थो की रचना हुई। अरबो ने भारत व यूनान के विज्ञान से अपने को काफी समृद्ध बना लिया था। इस्लामी जगत मे उमर खयाम तथा उलूगबेग जैसे प्रख्यात ज्योतिषी और बडे-बडे चिकित्सक हुए। अब हम देखेंगे कि भास्कराचार्य के बाद गणित ज्योतिष क क्षेत्र म नया क्या कुछ खोजा गया।

हम जानते हैं कि भास्कर के बाद उनके तथा अन्य गणितज्ञो के ग्रन्थो पर भारत क विभिन्न भागो म बहुत सारी टीकाएँ लिखी गयी पर दक्षिण भारत क केरल राज्य म गणित ज्योतिष के कुछ ऐसे ग्रन्थ लिखे गए जिनम गणित के विकास क दर्शन होते हैं।
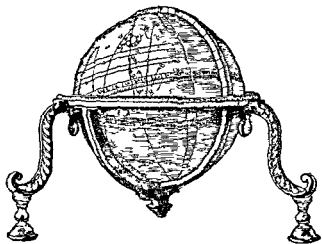
कांसे का बना हुआ भारतीय खगोल, जिसपर ताराकन चांदी से किया गया है।
(लगभग 1600 ई०)
(चित्र स्मिथ के हिस्टी ऑफ मथेमेटिक्स' ग्रन्थ से साभार)

केरल निवासी गणित-ज्योतिषी नीलकंठ ने 1502 ई० म तन्त्र-सग्रह नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ म श्रेणियो (सीरीज) का विवेचन है। नीलकंठ ने आर्यभट (499 ई०) के आर्यभटीय ग्रन्थ पर भी टीका लिखी है। हम देख चुके हैं कि आर्यभट ने π का एक काफी शुद्ध मान दिया था। नीलकंठ अच्छी तरह जानते थे कि π एक अपरिमेय संख्या है। वे लिखते हैं—वृत्त की परिधि तथा इसके व्यास के अनुपात (π) को हम पूर्णांको के भिन्न मे व्यक्त नही कर

सकते इसलिए हम इस अनुपात का एक सन्निकट मान लेते हैं।

किसी सोमयाजिन का लिखा हुआ केरल से करण-पद्धति नामक ग्रन्थ मिला है। यह ग्रन्थ कब लिखा गया, इसके बारे म स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती। लेकिन यह 15वीं सदी के बाद का है। इस पुस्तक म प्रसिद्ध ग्रेगोरी श्रेणी दी गई है। जेम्स ग्रेगोरी न 1671 इ० म इस श्रेणी की खोज की थी।

केरल के ही शकरवमन का लिखा हुआ ज्योतिष का ग्रन्थ है सदरत्नमाला। इस ग्रन्थ म – का शुद्ध मान 17 दशमलव स्थानों तक दिया गया है। केरल म ही लिखे गए एक अन्य ग्रन्थ युक्ति भाष म प्रमेयों की सिद्धियाँ दी गई हैं।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि केरल मे गणित ज्योतिष के परम्परागत अध्ययन का थोडा सिलसिला जारी रहा। गणित से सम्बन्धित कुछ नई बात भी खोजी गयी। परन्तु इस गणित की तुलना हम यूरोप के तत्कालीन गणित से नहीं कर सकते। यूरोप का गणित अब बहुत आगे बढ गया था। कलन-गणित यूरोप का एक महान आविष्कार है। यूरोप म बडे-बडे गणितज्ञ हुए। यूरोप के गणित म चिह्नों या सकेतों का अधिकाधिक इस्तेमाल होने लगा। दूसरी ओर हमारे देश म गणित-ज्योतिष के ग्रन्थ बोझिल और मृत सस्कृत भाषा म ही लिखे जाते रहे।

ज्योतिष के क्षेत्र म भी यूरोप बहुत आगे बढ गया था। कोपर्निकस का सूर्य केन्द्रवादी सिद्धान्त, न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त केपलर के ग्रह गति के नियम तथा गैलीलियो द्वारा दूरबीन के इस्तेमाल (1609 इ०) ने गणित-ज्योतिष को बहुत आगे पहुचा दिया था। दूसरी ओर हमारे देश म पुरानी पद्धति स ही ग्रह-नक्षत्रों का अवलोकन होता रहा। इस युग म अरबी ज्योतिष ने भारतीय ज्योतिष को प्रभावित किया। लेकिन इन पुराने साधनों से अब नया कुछ खोज पाना सम्भव नहीं था। जयपुर के राजा सवाई जयसिंह द्वारा किए गए प्रयासों पर विचार करने स यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

जयसिंह की वेधशालाएँ

खलीफाओं के शासनकाल म दमिश्क और बगदाद में वेधशालाओं का निर्माण हुआ था। दमिश्क में अल्बत्तानी (858 929 ई०) और बगदाद में अबुल वफा (939 998 ई०) जसे महान अरबी ज्योतिषियों ने वेधकार्य किया था। अरबी में तालेमी (150 ई०) के प्रख्यात ग्रन्थ अल्मजिस्ती और अन्य यूनानी गणितज्ञों के ग्रन्थों के अनुवाद हो चुके थे। अरबों को भारतीय गणित ज्योतिष की भी जानकारी मिल चुकी थी। अरबी गणित-ज्योतिष का तेजी से

विकास हुआ । इस्लामी जगत में बडे बडे गणित-ज्योतिषी हुए । उमर खयाम (बारहवा सदी) अपनी रुबाइयो के लिए प्रसिद्ध है परन्तु व एक महान गणित-ज्योतिषी भी थे ।

अरबा नान का ईरान व मध्य एशिया में भी विस्तार हुआ । मरेगा में तरहवीं सदी में एक वेधशाला खडी की गई और वहा प्रख्यात ज्योतिषी नसीरद्दीन न वेधकाय करक इलखान नामक ज्योतिष-सारणियाँ तैयार की । फिर उलूगवेग (1394-1449 ई०) ने समरकद में एक बढिया वेधशाला खडी की । उलूगवग अपन समय में ससार के सम्भवत सबसे बडे ज्योतिषी थ । उनकी ज्योतिष सारणिया का यूरोप में भी स्वागत हुआ । सवाई जयसिंह न अपनी वेधशालाओ (जतर मतरा) का निर्माण काफी हद तक समरकद की वेधशाला के आधार पर ही किया है ।

महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय (1686-1743 ई०)

सवाई जयसिंह (द्वितीय) तेरह साल की अल्पायु में 1699 ई० में आमेर (जयपुर) की गद्दी पर बैठे थे। उन्होंने चार मुगल बादशाहों—औरंगजेब, बहादुरशाह, फरुखसियर और मुहम्मदशाह—का शासनकाल देखा है। मुहम्मदशाह के शासनकाल (1719 48 ई०) में ही जयसिंह ने वेधशालाओं का निर्माण किया। चूना और पत्थरों से बनी हुई ये भव्य वेधशालाएं उन्होंने पांच स्थानों पर बनवायी—दिल्ली जयपुर, उज्जैन मथुरा और वाराणसी। इनमें से दिल्ली, जयपुर और वाराणसी की वेधशालाओं को अब भी देखा जा सकता है। वाराणसी की वेधशाला मानमंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। सम्भव है कि यहाँ पहले से ही कोई वेधशाला रही हो।

जानकारी मिलती है कि फीरोजशाह बहमनी के समय (1400 ई० के आसपास) दौलताबाद में एक वेधशाला खड़ी की गई थी। जौनपुर के मुल्ला महमूद के लिए शाहजहां एक वेधशाला बनवाना चाहता था लेकिन यह कार्य पूरा न हो सका। दिल्ली के पुराने किले में स्थित शेरमंडल के नाम से प्रसिद्ध इमारत सम्भवतः वेधशाला ही थी। इस युग में ऐस्ट्रोलेब नामक वेधयन्त्र का खूब इस्तेमाल हुआ है। लाहौर इस वेधयन्त्र के निर्माण का प्रमुख केन्द्र था।
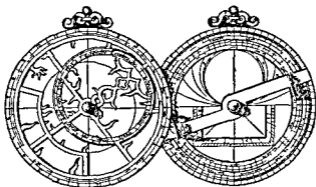
इटली में निर्मित सोलहवीं सदी का ऐस्ट्रोलेब ज्योतिष-यन्त्र। इस यन्त्र से ग्रह नक्षत्रों के उन्नतांश ज्ञात किए जाते थे। ऐस्ट्रोलेब शब्द यूनानी भाषा का है, जिसका अर्थ है—तारों को साधना। इस ज्योतिष-यन्त्र का आविष्कार संभवतः यूनानियों ने ही किया था, किन्तु इसका विकास हुआ अरबी ज्योतिषियों के हाथों। भारत में निर्मित दो-तीन ऐस्ट्रोलेब दिल्ली के लाल किले के संग्रहालय में देखे जा सकते हैं।

(चित्र स्मिथ के 'हिस्टरी आफ मथेमटिक्स' ग्रन्थ से साभार)

सवाई जयसिंह ने ज्योतिष के अध्ययन की इसी नई परम्परा को आगे बढ़ाया। उलुगबेग की तरह उन्हें भी गणित-ज्योतिष के अध्ययन का शौक था। उनके दरबार में पंडितराज जगन्नाथ नाम के एक प्रख्यात ज्योतिषी थे। वे अरबी-फ़ारसी के भी पंडित थे। उन्होंने तालमी के अरबी में अनूदित अल्-मजिस्ती ग्रन्थ का सिद्धान्त-सम्राट नाम से संस्कृत में अनुवाद किया। इस ग्रन्थ में उन्होंने उलुगबेग व जयसिंह की ज्योतिष सम्बन्धी मान्यताओं का कई बार उल्लेख किया है। पंडितराज जगन्नाथ ने यूक्लिड (300 ई० पू०) के ज्यामिति के ग्रन्थ का भी किसी अरबी अनुवाद से संस्कृत भाषा में पहला अनुवाद किया था।

इस प्रकार जयसिंह के इन प्रयासों में भारतीय एवं अरबी ज्योतिष का
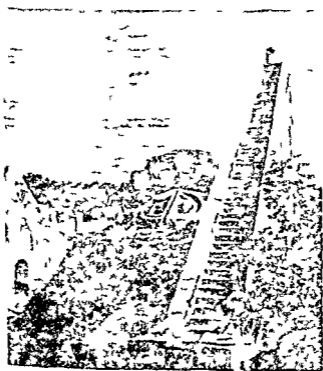
नई दिल्ली स्थित महाराजा सवाई जयसिंह की वेधशाला (जन्तर-मन्तर)। चित्र में सामने सम्राट-यन्त्र दिखाई दे रहा है और पीछे मिश्र-यन्त्र। इस वेधशाला का निर्माण 1724 ई० के आसपास हुआ था।

समन्वय हुआ। जयसिंह ने यूरोप के ज्योतिषियों के साथ सम्पर्क स्थापित करने का भी प्रयत्न किया। उन्होंने भारत में बसे हुए पुर्तगाली ज्योतिषियों को भी अपने दरबार में बुलाया, लेकिन उन्हें दूरबीन जैसे महत्त्वपूर्ण ज्योतिष-यन्त्र के बारे में जानकारी नहीं मिल पायी।

जयसिंह की वेधशालाओं के ज्योतिष-यन्त्र विशाल होने पर भी सूक्ष्मता का ध्यान रखकर बनाए गए हैं। इनमें चार यन्त्र प्रमुख हैं—सम्राट यन्त्र, राम-यन्त्र, जयप्रकाश-यन्त्र और मिश्र-यन्त्र। सम्राट-यन्त्र एक प्रकार की विशाल धूप घड़ी (ग्नोमोन) है। मिश्र यन्त्र में कई ज्योतिष-यन्त्रों का मिश्रण हुआ है। दरअसल, ये सारे यन्त्र स्थितिमापक एवं कालमापक हैं। दूसरी ओर, यूरोप में उस समय आकाशीय ज्योतियों के भौतिक गुणधर्मों के अध्ययन (ज्योतिर्भौतिकी) की शुरुआत हो चुकी थी और कालमापक एवं स्थितिमापक सूक्ष्म तथा हल्के यन्त्रों का तेजी से विकास हो रहा था। अतः जयसिंह की वेधशालाओं के विशाल यन्त्रों में अब नया कुछ विशेष खोजना सम्भव नहीं था।

भास्कराचार्य के बाद हमारे देश में भारतीय ज्योतिष-परम्परा के अनेक ज्योतिषी हुए जिन्होंने अनेक टीकाग्रन्थों की रचना की। इनमें गणेश दैवज्ञ एक प्रख्यात ज्योतिषी हुए। उन्होंने 1520 ई० में ग्रहलाघव नामक ज्योतिष ग्रन्थ की रचना की जिसे काफी प्रसिद्धि मिली। ये महाराष्ट्र के निवासी थे और इनके कुल में अनेक ज्योतिषी हुए।

भारत में अंग्रेजी सत्ता स्थापित होने पर और यूरोप के गणित-ज्योतिष के सम्पर्क में आने के बाद पिछले करीब सौ साल में हमारे देश में ऐसे अनेक ज्योतिषी हुए जिन्होंने आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में प्राचीन भारतीय ज्योतिष पर अनुसंधान-कार्य किया है। इनमें **बापूदेव शास्त्री, सुधाकर द्विवेदी, वेंकटेश बापूजी केतकर और शंकर बालकृष्ण दीक्षित** के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन पंडितों ने गणित-ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थों के उद्धार का बड़ा काम किया है।

लेकिन यह एक सत्य है कि पुराने ग्रन्थ और पुराने ज्ञान का अब केवल विज्ञान के इतिहास की दृष्टि से ही महत्त्व है। गणित व ज्योतिष अब बहुत उन्नति कर चुके हैं। विज्ञान की नई विधियों को अपनाकर और सारे संसार की वैज्ञानिक गतिविधि के साथ सम्पर्क स्थापित करके ही अब कुछ नया खोजा जा सकता है।

नये युग में हमारे देश में **रामानुजन** (1887-1920 ई०) एक बहुत बड़े गणितज्ञ हुए। उनका जन्म कुम्भकोणम् के एक गरीब परिवार में हुआ था।

बनी कठिनाई से ही वे इण्टर तक पढाई कर पाए। लेकिन जब उनकी प्रतिभा को पहचाना गया तो उन्हें इगलैंड भेजा गया। रामानुजन की गवेषणाएँ मुख्यत सख्या सिद्धान्त से सम्बन्धित हैं। रामानुजन के बाद हमारे देश में अनेक गणितज्ञ हुए और विज्ञान जगत में नाम कमा रहे हैं।

फलित-ज्योतिष जैसे पुराने अन्धविश्वास को हमारे देश में अब भी काफी महत्व दिया जाता है। लेकिन अनेक भारतीय वैज्ञानिक अब खगोल-विज्ञान में खोजकार्य करके ससार में नाम कमा रहे हैं। हमारे देश में आधुनिक पद्धति

श्रीनिवास रामानुजन (1887 1920 ई०)

की कुछ वेधशालाएँ भी बनी हैं। ये वेधशालाएँ नैनीताल व हैदराबाद के पास हैं। उटकमंड में अभी कुछ साल पहले एक रेडियो-दूरबीन भी स्थापित हो गई है।

सुब्रह्मण्यम चन्द्रशेखर (जन्म 1910 ई०) ससार के चोटी के ज्योतिभौतिकविद् माने जाते हैं। पिछले कई वर्षों से वे अमरीका में हैं। लेकिन भारत के अनेक तरुण वैज्ञानिक अब खगोल विज्ञान में खोजकार्य कर रहे हैं। फिर भी हम काफी पिछड़े हुए हैं मुख्यत वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए आवश्यक साधनों के अभाव के कारण। हमारे देश की सबसे बड़ी दूरबीन के दर्पण का व्यास 102 इंच है जबकि सोवियत रूस में हाल ही में स्थापित की गई ससार की सबसे बड़ी दूरबीन के दर्पण का व्यास 240 इंच है।

प्राचीन भारत मे रसायन का विकास

आज हम 'कैमिस्टी' के लिए 'रसायन शब्द का इस्तेमाल करते हैं। अब यह विषय बहुत उन्नति कर चुका है। अन्य विषयो के साथ सम्बधित होकर इसने विज्ञान के अनेक उपागो को जन्म दिया है। जसे, जब रसायन को आजकल एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय माना जाता है।

यह 'कमिस्ट्री शब्द यूरोप की भाषाओ का नही है। यह अरबी के कीमिआ' शब्द से बना है। पुरानी पद्धति के रसायन को अरबी म अल कीमिआ कहते थे। मध्ययुग मे जब अरबी ग्रन्थो के यूरोप की भाषाओ म अनुवाद हुए तो 'अल कीमिआ से 'अल कमी' शब्द बना। इसी अल कमी से अल को अलग कर देन के बाद आधुनिक कमिस्टी शब्द बना है।

लेकिन कीमिआ शब्द मूलत अरबी भाषा का भी नही है। विद्वानो का मत है कि यह शब्द या तो प्राचीन मिस्र के चम (काली भूमि) शब्द म बना है या चीनी भाषा के चीमा (धातु का गलन) शब्द से। अधिक सम्भावना इसी बात की है कि यह शब्द मूलत चीनी भाषा का है। शब्दोत्पत्ति के इस विवरण स यह भी जानकारी मिलती है कि कीमियागरी का विस्तार किस प्रकार हुआ है।

रसायन (रस अयन) शब्द का अर्थ है रस की गति । प्राचीन काल में रस शब्द का मुख्य अर्थ था वनस्पति से प्राप्त रस जस, सोमरस। रसो का औषधि के रूप म इस्तेमाल होता था इसलिए उस जमाने म रसायन आयुर्वेद का ही एक अग था। आयुर्वेद के आठ अगो म रसायन की भी गणना होती है। दूसरे देशो मे भी प्राचीन काल मे चिकित्सा और रसायन का अभिन्न सम्बन्ध रहा है।

फिर, ईसा की आरम्भिक सदियो से, रसायन शब्द का अर्थ व्यापक हो गया। रस शब्द का मुख्य अर्थ हो गया पारा या पारद। भारत म रसायन का अर्थ ही हो गया पारदशास्त्र। पारे के बारे म बहुत सारे प्रयोग होने लगे। लोग समझने लगे कि पारे के सेवन स दीर्घायु प्राप्त होती है और इसी जीवन

में मुक्ति मिल जाती है। अन्य धातुओं का भी शोधन, मारण, जारण आदि होने लगा। इन प्रक्रियाओं के लिए बहुत सारे यन्त्र बने।

हमारे देश में, और दूसरे देशों में भी, नकली सोना बनाने के प्रयोग होने लगे। रससिद्धों के सम्प्रदाय अस्तित्व में आए। बहुत सारे ग्रन्थों की रचना हुई। प्राचीन काल का यह रसायनशास्त्र कीमियागरी था। यूरोप में 17वीं सदी तक कीमियागरी का बोलबाला रहा है। लेकिन उसके बाद यूरोप के रसायनज्ञों ने कीमियागरी से सम्बन्धित पुराने अन्धविश्वासों को त्याग दिया और वहाँ आधुनिक रसायन विज्ञान ने जन्म लिया।

हमारे देश में पुरानी पद्धति के रसायन (कीमियागरी) का सिलसिला सोलहवीं सदी तक चलता रहा। उस समय तक हमारे देश के कीमियागर दूसरे देशों के कीमियागरों से पीछे नहीं थे। पारदशास्त्र में तो हमारा देश बहुत ही आगे था। पर हमारे देश के कीमियागर नई वैज्ञानिक विधियों को अपनाकर रसायन विज्ञान को जन्म न दे सके। आधुनिक रसायन विज्ञान के जनक यूरोप के वैज्ञानिक हैं।

प्रस्तुत प्रकरण में हम भारतीय रसायन (कीमियागरी) पर ही विचार करेंगे। भारतीय रसायन के अध्ययन में अनेक कठिनाइयाँ हैं। रसायन के अनेक ग्रन्थ मिलते हैं परन्तु उनके लेखक तथा उनके काल के बारे में बड़ा झमेला है। यहाँ तक कि महान रसायनज्ञ नागार्जुन के बारे में भी हमें ठोस जानकारी नहीं मिलती। फिर भी हम यहाँ भारतीय रसायन की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे। यहाँ हम उस रसायन की चर्चा नहीं करेंगे जिसका सम्बन्ध आयुर्वेद से रहा है। यहाँ हम उस रसायन का परिचय प्राप्त करेंगे जिसका सम्बन्ध मुख्यतः धातुओं के शोधन मारण-जारण आदि से रहा है।

प्राचीन काल में हमारे देश में 'मुक्ति' की धारणा को बड़ा महत्त्व दिया जाता था। कोई भी ठीक से नहीं बता सकता था कि यह मुक्ति क्या वस्तु है पर इसके लिए पुराने ग्रन्थों में तरह-तरह के आध्यात्मिक उपाय बताए गए हैं। लेकिन मृत्यु के बाद की जीवनमुक्ति से क्या लाभ? मुक्ति के इस ढकोसले से लोगों का विश्वास उठता जा रहा था।

फिर इसी जीवन में मुक्ति प्राप्त करने के उपाय खोजे जाने लगे। इन्हीं प्रयासों से रसतन्त्र ने जन्म लिया, ईसा की आरम्भिक सदियों में। योगसूत्रकार पतंजलि (ईसा की दूसरी-तीसरी सदी) लिखते हैं कि जड़ी-बूटियों के रस (औषधि) से भी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। अतः लगता है कि उस समय

रससिद्धों का सम्प्रदाय अस्तित्व में आ गया था। रससिद्धों का उद्देश्य ही था, इसी जीवन में जीवनमुक्ति के उपाय खोजना। रसायन के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ रसार्णव में भैरव (शिव) पार्वती को उपदेश देते हुए कहते हैं—शरीर के न रहने पर मोक्ष मिला तो वह निरर्थक है (पिण्डपाते च यो मोक्ष स च मोक्षो निरर्थक)। और मरने पर तो गदहा भी मुक्त हो जाता है (पिण्डे तु पतिते देवि गर्दभोऽपि विमुच्यते)।

इस प्रकार जीवनमुक्ति के लोभ से रसायन के अध्ययन का सिलसिला शुरू हुआ। न केवल वनस्पति की बल्कि धातुओं की भी औषधियाँ बनने लगीं। पारे की औषधियों को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया। पारे को **रसराज** कहा जाने लगा। फिर ये रसायनाचार्य सोना व चाँदी बनाने के चक्कर में भी फँस गए।

उस जमाने में न केवल हमारे देश में, बल्कि दूसरे देशों में भी कीमियागरों के सम्प्रदाय अस्तित्व में आए। चीन इस विद्या का गढ़ था। वहाँ प्राचीन काल में नकली सोना बनाने का दावा करनेवाले अनेक कीमियागर हुए। कई चीनी सम्राट इन कीमियागरों के चक्कर में फँस गए थे। लेकिन कुछ सम्राटों ने ईसा पूर्व दूसरी सदी में इस कीमियागरी पर पाबन्दी लगाने के लिए राज्यादेश भी जारी किए थे। वहाँ कई कीमियागरों को मृत्युदण्ड भी दिया गया था। चीन में सोना कम पाया जाता था इसीलिए वहाँ नकली सोना बनाने के ये खोटे धन्धे शुरू हुए थे। **पारस** पत्थर भी मूलतः चीन की ही कल्पना है।

चीन के **ताओ** सम्प्रदाय के अनुयायी सिद्धि और कीमियागरी को विशेष महत्त्व देते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि यह विद्या चीन से ही भारत पहुँची है और फिर यहाँ सिद्धों के अनेक सम्प्रदाय अस्तित्व में आये। आरम्भ में बौद्धों ने इस विद्या को अपनाया। फिर शैवों के सिद्ध सम्प्रदाय भी अस्तित्व में आये। इतना ही नहीं, **रसेश्वर** दर्शन भी अस्तित्व में आया जिसकी जानकारी **माधवाचार्य** (चौदहवीं सदी) ने अपने सर्वदर्शन-संग्रह में दी है।

नागार्जुन को रसायनशास्त्र का आदि प्रवर्तक माना जाता है। आयुर्वेद के विकास पर विचार करते समय हमने देखा है कि एक नागार्जुन सुश्रुत-संहिता के प्रतिसंस्कर्त्ता थे। यह भी कहा जाता है कि सुश्रुत संहिता के 'उत्तरतन्त्र' की रचना नागार्जुन ने की है। दूसरी ओर कालान्तर में रसरत्नाकर या रसेन्द्रमंगल ग्रन्थ को नागार्जुन की कृति माना जाता है। नागार्जुन नाम के एक प्रख्यात बौद्ध दार्शनिक भी हुए हैं। ऐसी स्थिति में यह जान पाना कठिन है कि

रसायनाचार्य नागार्जुन कौन हैं और उनका समय क्या है । ईसा की पहली सदी से दसवीं सदी तक हमे नागार्जुन के बारे में अनेक उल्लेख मिलते हैं ।

सिद्ध नागार्जुन
एक तिब्बती शिल्प के आधार पर तयार किया गया चित्र ।

एक नागार्जुन ईसा की दूसरी सदी में कनिष्क और सातवाहन राजा के समय में हुए । ये बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन थे । चीनी यात्री युवान-च्वाङ (भारत-यात्रा 629-645 ई०) अपने ग्रंथ में जानकारी देते हैं कि नागार्जुन सातवाहन राजा के समय में हुए । वे यह भी जानकारी देते हैं कि नागार्जुन रसायन के आचार्य थे और उन्होंने लम्बी आयु पायी थी । अतः लगता है कि बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन रसायनाचार्य भी थे ।

लेकिन अल्बेरूनी (1030 ई०) जानकारी देते हैं कि उनके करीब सौ साल पहले नागार्जुन नाम के एक महान रसायनज्ञ हुए, जो सोमनाथ के समीप के दैहक स्थान के निवासी थे । दूसरी ओर रसायन के कुछ ऐसे ग्रंथ मिलते हैं जिन्हें नागार्जुन की कृतियाँ माना जाता है और जो दसवीं-ग्यारहवीं सदी के बाद की रचनाएँ हैं । ऐसी दशा में रसायनज्ञ नागार्जुन कौन थे और

उनका ठीक समय क्या है, यह जान पाना मुश्किल है। बौद्धों के सिद्ध सम्प्रदाय म नागाजुन नाम के एक सिद्ध हुए। उन्हें भी रसायनज्ञ माना जाता है। रसायन के प्राय सभी ग्रन्थो म नागाजुन का उल्लेख मिलता है।

सम्भव है कि रसायनाचाय नागाजुन दो हुए हो। रसायन के आदि प्रवतक थे बौद्ध दाशनिक नागाजुन (ईसा की दूसरी सदी) और सिद्ध नागाजुन (सातवी-आठवी सदी) भी रसायनज्ञ थ। जो भी हो उपलब्ध ग्रन्थो के आधार पर ही हम यहा भारतीय रसायन की जानकारी प्राप्त करेंगे।

रसरत्नाकर या रसेन्द्रमगल भारतीय रसायन का एक प्राचीन ग्रथ है। इस ग्रन्थ की रचना सातवी से ग्यारहवी सदी के बीच म हुई है। **नागाजुन** को इस ग्रन्थ का रचयिता माना जाता है। यह महायानी बौद्धो का एक तन्त्र ग्रन्थ है। रसरत्नाकर मे सम्वाद के रूप म रसायन की बातें बतलायी गई हैं। यह सम्वाद नागाजुन रत्नघोष वटयक्षिणी शालिवाहन और माण्डव्य के बीच होता है।

इनम **रत्नघोष और माण्डव्य** प्रसिद्ध रसायनज्ञ थे। बाद के ग्रन्थो म भी इनके नाम मिलते हैं। **शालिवाहन** सम्भवत कोई सातवाहन राजा था। रसरत्नाकर म जानकारी मिलती है कि बारह वष साधना करने के बाद वट यक्षिणी की कृपा से नागाजुन को रसबन्ध (पारा बाधने) की विधि मालूम हुई थी। नागाजुन ने इसी विद्या की जानकारी दी है।

यह सम्भव है कि इस ग्रन्थ का नाम पुराना हो और रसायनज्ञ नागाजुन का समय ईसा की दूसरी सदी ही हो। ग्रन्थ की रचना बाद म हुई होगी। इस ग्रन्थ मे नागाजुन ने पारे के लक्षण बतलाये हैं। आठ महारसो की जानकारी देकर सोना बनाने की विधियाँ भी बतलायी हैं। जसे यदि पीले गधक को पलाश के गोद के रस से शोधित किया जाय और कडों की आग पर तीन बार पकाया जाय तो इससे चाँदी को सोने मे बदला जा सकता है। ताबे को सोने म बदलने की विधि भी बतलायी गयी है। स्पष्ट है कि यहाँ कृत्रिम सोने का अथ है—सोने के रग जसी धातु।

इस ग्रन्थ म पारे को बाधने तथा धातुओ को शुद्ध करने की अनेक विधिया दी गइ हैं। रसविद्या से सम्बन्धित कुछ यन्त्रो (उपकरणो) के बारे म भी जानकारी है। जसे पारे की पिष्टि से भस्म तयार करने के लिए **गभयन्त्र** का इस्तेमाल होता था। यह यन्त्र मिट्टी की एक मूषा था।

ईसा की आठवी सदी मे रचित **रसहृदयतन्त्र** नामक एक ग्रन्थ मिलता है जिसके रचयिता हैं **भिक्षु गोविंद**। सवदशन सग्रह म रसेश्वर दशन के बारे म

भारतीय रसशाला

जो जानकारी दी गई है उसम भी गोविन्द भगवत्पादाचाय का उल्लेख है। दूसरी ओर हम जानते हैं कि शकराचाय के गुरु का नाम भी गोविन्द था। हम यह भी जानते हैं कि गोविन्दाचाय बौद्ध मत स प्रभावित थे और यह प्रभाव शकर के दशन म भी प्रकट होता है। अत अनेक विद्वानो का मत है कि रसायनाचाय गोविन्द शकर के गुरु थे और उनका समय ईसा की आठवी सदी है।

रसहृदय म 18 रसकर्मों के बारे म जानकारी दी गयी है। य हैं—स्वेदन मर्दन, मूर्च्छना, उत्थापन पातन रोधन नियमन दीपन गगनग्रास चारण गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति जारण रसराग सारण क्रामण वधन और भक्षण। इस ग्रन्थ म रसकर्म से सम्बधित कुछ यन्त्रो एव उपकरणो के बारे म भी जानकारी

दी गयी है। इस ग्रथ म पारे म सोने का रग पदा करने के योग (विधियाँ) भी वतलाये गये हैं।

बारहवी सदी म रचित रसाणव रसविद्या का एक महत्त्वपूण ग्रथ है। इस ग्रथ के लेखक के बारे मे हमे कोई जानकारी नही मिलती। हम पहले बता चुके ह कि रसविद्या के आरम्भिक ग्रथा के रचयिता बौद्ध मत के अनुयायी थे। बाद मे शवो ने भी इस विद्या को अपनाया और रसतन्त्रा की रचना की। रसाणव शवमत का ग्रथ है। प्रनापारमिता और बोधिसत्व का स्थान अब शिव और पावती ने ले लिया था। रसाणव म शिव पावती के सवाद दिये गए हैं। पावती सवाल करती हैं और भरव (शिव) उत्तर देते हैं।

आरम्भ म शिव पारे की उत्पत्ति तथा इसके महत्व के बारे मे जानकारी देते हैं। व कहते हैं कि यह उन्ही के शरीर का रस है। यह जीवनमुक्ति देनेवाला है। सवदशन सग्रह के रसेश्वर दशन म रसाणव ग्रथ का उल्लेख है। इस ग्रथ मे *अठारह पटल अथवा अध्याय हैं।*

रसाणव के दूसरे पटल (दीक्षाविधान) में गुरु शिष्य के सम्बन्ध रस साधिका तथा रसशाला के बारे में जानकारी दी गयी है। रसकम में निम्न वग की एक नारी का होना बडा जरूरी था। इसी को **रससाधिका** कहा गया है। रसाणव के चौथे पटल में अनेक यन्त्रो के बारे में जानकारी दी गयी है। इनमें दोलायन्त्र, मूषायन्त्र गभयन्त्र आदि का वणन है। कई प्रकार की मूषाओ के बारे में भी जानकारी दी गयी है।

रसाणव के बाद रचा गया रसविद्या का एक प्रमुख ग्रन्थ है **रसरत्नसमुच्चय**। इसके रचयिता वाग्भट माने जात हैं परन्तु ये उस वाग्भट स भिन्न हैं जिन्होंने अष्टागहृदय की रचना की है। रसरत्नसमुच्चय ग्रथ ईसा की तरहवी से पद्रहवी सदी के बीच रचा गया। यह शैवमत का रसतन्त्र है।

इस ग्रथ के आरम्भ में ही पारद की स्तुति है और माण्डव्य व्याडि नागाजुन, गोविन्द आदि 27 प्राचीन रसायनाचार्यों की सूची दी है। पारे को *शिव का और गधक को पावती का प्रतीक माना गया है।* इस ग्रथ में पारे के लिंग की स्थापना तथा उसकी पूजा को बडा महत्त्व दिया गया है।

रसरत्नसमुच्चय में रसकम के लिए आवश्यक वस्तुओ तथा उपकरणा के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी है। इसमें पारे के दोषा को दूर करने के लिए 18 सस्कारो के बारे में भी विस्तार से जानकारी दी गयी है। स्वेदन, मदन मूच्छन पातन (उध्वपातन, अधपातन और तियकपातन) आदि य सस्कार हैं।
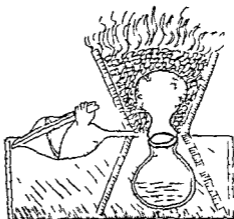
रसायन-यन्त्र 1 अधःपातनयंत्र 2 कोष्ठीयंत्र 3 स्वेदनीयंत्र 4 तिर्यक्पातनयंत्र

रसरत्नसमुच्चय के बाद भी हमारे देश में रसायन के अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। इस रसायन विद्या को हम कीमियागरी ही कहेंगे। देहसिद्धि इस विद्या का मुख्य लक्ष्य था। फिर भी इस विद्या के प्रयोगों से अनेक रासायनिक प्रक्रियाओं की खोज हुई। लेकिन क्या लाभ ? इस विद्या को विज्ञान में नहीं बदला गया। इस विद्या को धार्मिक सम्प्रदायों तक ही सीमित एवं गुप्त रखा गया। आधुनिक रसायन विज्ञान यूरोप के वैज्ञानिकों की देन है।

प्राचीन भारत मे धातुकर्म

सिधु सभ्यता की वज्ञानिक उपलब्धिया पर विचार करते समय हमने तावे क धातुकम की जानकारी दी है। फिर हमने यह भी देखा है कि भारत म आर्यों के आगमन के साथ यहाँ लौहयुग की शुरुआत होती है।

हमने देखा है कि सिधु सभ्यता के लोग तावे और कासे की ढलाई करना जानत थे। मोहनजोदडो से प्राप्त नतकी वाला की कासे की मूर्ति ढली हुई है।

वाद म हमारे देश म तावे और कासे की वहुत सारी वस्तुएँ वनी। ताव, कासे और अष्टधातु की बहुत सारी मूर्तिया नष्ट हो गयी हैं। वहुत सारी मूर्तिया गला दी गयी है। फिर भी कुछ मूर्तिया बची है जिह देखने स पता चलता है कि धातुकम म हमारा देश काफी उनत था।

पिछली सदी के उत्तराध म सुल्तानगज (बिहार) से बुद्ध की तांब की एक विशाल मूर्ति मिली थी। अब यह मूर्ति बर्मिघम सग्रहालय (इगलड) म है। सम्भवत दो खडा म ढाली गयी यह मूर्ति 7 फुट 6 इच ऊँची है और लग भग एक टन भारी है। अभयमुद्रा म खडी बुद्ध की यह मूर्ति सारनाथ से प्राप्त इसी प्रकार की एक प्रस्तर मूर्ति से मिलती जुलती है। अत अनुमान है कि तावे की यह मूर्ति इसा की पाँचवी सदी म ढाली गयी थी।

प्राचीन भारत म तावे का खूब इस्तेमाल हुआ है। तावे क वहुत सार पुराने सिक्के मिल हैं जो ढाले जात थे। ढलाई के साँचे भी मिले हैं। दानपत्रा के लिए भी ताँबे का इस्तेमाल हुआ है। वस्तुत ताव की वस्तुओ क बारे म विशेष जानकारी देने की जरूरत नही है। सभी देशा म ताव और कांस की वस्तुएँ वनती थी आज भी बनती हैं। चीन जसे देश ताव और कांस के धातु कम म वढे चढे थे। अत प्रस्तुत प्रकरण म हम मुख्यत लोहकम पर ही विचार करेंगे।

वदिक काल के विज्ञान पर विचार करते समय हमने आरम्भिक लौहकम पर थोडा विचार किया है। लोहे की वस्तुआ म जग लग जाता है, इसलिए लोहे की अधिक प्राचीन छोटी वस्तुएँ हम नही मिलती। जो मिलती हैं व जग

खाइ हुइ होती हैं। फिर भी उत्तर भाग्त के कई स्थाना स 600 ई० पू० के आसपास की ल्हाहे को वस्तुएँ मिली हैं।

दक्षिण भारत क अनेक स्थाना से ईसा पूव पाचवी मदी की ल्होहे की वस्तुए मिली हैं। उस जमाने मे दक्षिण भारत के लोग शवो को मिट्टी के बडे शवाधाना म रखकर लम्बे चौडे गडढो म रख दते थे और ऊपर बडे-बडे पाषाण खडे कर देते थे। इसलिए उनकी सस्कृति को महापाषाण सस्कृति का नाम दिया गया है। दक्षिण भारत की ऐसी कब्रा म ल्होहे के औजार मिले हैं।

भारत म खनिज ल्होहा पर्याप्त माता मे उपलब्ध है और इसकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। लोहा मुख्यत तीन प्रकार का हाता है—ढलवा लोहा, पिटवा लोहा और इस्पात।

जानकारी मिलती है कि ईसा पूव चार-पाच सदी पहले भारत की लोहे की वस्तुआ की पश्चिमी एशिया के देशा मे खूब ख्याति थी। भारतीय इस्पात का निर्यात भी होता था और इससे तलवारें बनाई जाती थी। भारतीय इस्पात से बनी दमिश्क तलवार पश्चिमी एशिया के देशा म प्रसिद्ध थी। जानकारी मिलती है कि ईसा पूव पाचवी सदी मे किसी भारतीय राजा ने ईरान के सम्राट को इस्पात की दो तलवारें भेंट की था। यह भी जानकारी मिलती है कि पुरु राजा ने सिकन्दर को करीब 15 सेर इस्पात भेंट किया था। इससे स्पष्ट है कि उस जमाने म भारतीय इस्पात की खब प्रसिद्धि थी।

ढलवा लोहा तयार करने के लिए 1530° सेंटीग्रेड से ऊपर तापमान की जरूरत हाती है। अनेक विद्वानो का मत है कि प्राचीन भारत के धातुकमकार इतना ऊँचा तापमान प्राप्त करने मे समथ नही थे इसलिए वे ढलवा लोहा तैयार करन म भी समथ नहीं थे। और यदि ढलवाँ लोह की कुछ वस्तुएँ बनी भी हैं तो बनी नहो हैं। प्राचीन भारत मे पिटवाँ लोहे का ही अधिक इस्तेमाल हुआ है। प्राचीन भारत के पिटवाँ लोह का सर्वोत्तम स्मारक है महरौली (दिल्ली) का लौहस्तम्भ।

कुतुबमीनार के समीप यह लौहस्तम्भ खडा है। इस लौहस्तम्भ के बारे म अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित ह। बहुत-से लाग वहाँ जाकर उल्टे हाथा से उस स्तम्भ का मापने की कोशिश करत हैं और अपना भाग्य' आजमाते हैं। यह लौहस्तम्भ 24 फुट ऊचा है। नीचे की ओर इसका व्यास 16 4 इन्च है और ऊपर सिरे की ओर 12 इच। इसका शीषभाग, जिसम कइ वलय हैं करीब साढे तीन फुट ऊँचा है। पूरे लौहस्तम्भ का भार करीब 6 टन है।

कइ लोग सोचते हैं कि पूरा लौहस्तम्भ ढलवाँ लोहे से बना है। लेकिन

बात ऐसी नहीं है। यह पिटवाँ लोहे से बना है। पिटवाँ लोहे के कई खडो को जोड़कर यह लौहस्तम्भ बनाया गया है।
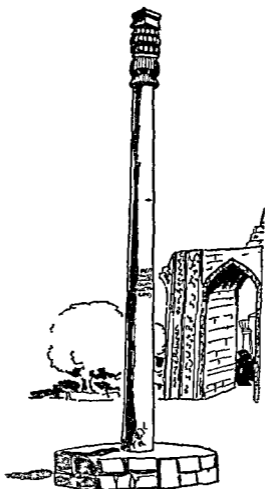
महरौली (दिल्ली) मे कुतुबमीनार के पास खड़ा लौहस्तम्भ (लगभग 400 ई०)

इस लौहस्तम्भ क जमीन के ऊपर के भाग को जग नही लगा है। लेकिन इधर के अनुसधाना से जानकारी मिली है कि इसके जमीन के भीतर के भाग का काफी जग लगा है जिससे नीचे इसकी मोटाई करीब तीन चौथाई रह गई है। ऊपरी भाग में जग न लगने के कई कारण हो सकते हैं। एक कारण यह है कि यह

स्तम्भ काफी शुद्ध पिटवाँ लोहे से बना है। स्तम्भ मैंगनीज और गन्धक की मात्रा नहीं के बराबर है। यह काफी शुद्ध अयस्क से तैयार किया गया होगा। यह भी सम्भव है कि तैयार करते समय इस लौहस्तम्भ पर लोहे के चुम्बकीय आक्साइड या इस्पात की पतली परत जम गई है, जिससे इसमें लम्बी कालावधि में भी जंग नहीं लग पाया है। दिल्ली प्रदेश की विशेष जलवायु ने भी इस स्तम्भ को सुरक्षित रखने में सहयोग दिया है। जो भी हो प्राचीन जगत में लोहे का ऐसा अन्य स्मारक हम अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलता।

इस लौहस्तम्भ पर कुछ पंक्तियों का एक लेख खुदा हुआ है। संस्कृत काव्य के इस लेख में जानकारी मिलती है कि किसी चन्द्र राजा की दिग्विजय की स्मृति में विष्णुध्वज नामक यह स्तम्भ विष्णुपद पहाड़ी पर खड़ा किया गया था। यह विष्णुपद पहाड़ी कहाँ थी इसके बारे में काफी मतभेद है। लेकिन जानकारी मिलती है कि तोमर वंश का राजा अनंगपाल ग्यारहवीं सदी में इस लौहस्तम्भ को दिल्ली उठा लाया था।

लौहस्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख में जिस चन्द्र राजा का उल्लेख है उसकी पहचान के बारे में भी अनेक मत हैं। इस लेख की लिपि के अक्षर गुप्तकाल की ब्राह्मी लिपि के अक्षरों से मिलते जुलते हैं। यह लिपि ईसा की चौथी-पाँचवीं सदी की है। इसलिए कई विद्वान इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि लेख में जिस चन्द्र राजा का उल्लेख है, वह गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त (द्वितीय) है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि यह लौहस्तम्भ डेढ़ हजार साल पुराना है।

इसके बाद पिटवाँ लोहे की बनी हुई बहुत सारी वस्तुएँ मिलती हैं। हमारे देश में ढलवाँ लोहे का निर्माण विशाल स्तर पर कभी नहीं हो पाया। यूरोप में वात भट्ठी का निर्माण चौदहवीं सदी में हुआ और ढलवाँ लोहे के निर्माण में कोक का इस्तेमाल अठारहवीं सदी से हुआ। फिर वहां ढलवाँ लोहे से इस्पात बनाने की बेसेमर तथा खुली भट्ठी की विधियों की खोज हुई।

अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यूरोप की इन विधियों को भारत में अपनाया गया। आधुनिक विधियों से लोहा और इस्पात तैयार करने का पहला कारखाना 1777 ई० में बीरभूम (पश्चिम बंगाल) में खुला। इसके बाद अनेक कारखाने खुले, जिनमें से कई अल्पजीवी रहे। जमशेदपुर का टाटा आयरन एण्ड स्टील कारखाना 1911 ई० में खुला।

अब रौडकेला भिलाई और दुर्गापुर में लोहे के उत्पादन के विशाल कारखाने बनकर तैयार हो रहे हैं। अपने उत्तम खनिज लोहे के भण्डारों के लिए भारत प्रसिद्ध है ही।

उपसहार

इस पुस्तक म हमने भारतीय विनान के विकास की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है। सभी विषया के बारे म जानकारी देना सम्भव नही था। जैसे, भौतिकी की हमने कोई चर्चा नही की है। दरअसल भौतिकी का विकास आधुनिक काल म ही हुआ है।

वैसे, प्राचीन यूनान मे देमोक्रितु (लग० 460 370 ई० पू०) ने परमाणुवाद की स्थापना की थी। भारत म भी वशेषिक दशन के सस्थापक आचाय कणाद न अति सूक्ष्म के अथ मे अणु की कल्पना की थी। परन्तु प्राचीन काल क इन परमाणुवादा का विकास नही हा पाया। आधुनिक युग म परमाणु सिद्धात को वनानिक आधार प्रदान किया इगलण्ड के प्रख्यात वनानिक जोन डाल्टन (1766-1844 ई०) ने। तदनतर ही आधुनिक भौतिकी का तजी स विकास हुआ है।

वनस्पतिशास्त्र बहुत पुराना विषय है। आदिम युग का मानव भी पड पौधा और जडी बूटियो के बारे मे काफी जानकारी रखता था। आयुर्वेद के अध्ययन म वनस्पति का नान अत्यावश्यक माना गया था। इस सम्बध म बौद्ध चिकित्सक जीवक के बारे म एक किस्सा मशहूर है। आयुर्वेद का अध्ययन करने के लिए वे राजगृह से तक्षशिला गए थे। उनकी शिक्षा जब पूरी हुई तो आचाय न उनसे कहा— तक्षशिला के आसपास एक योजन के घेरे मे खोजबीन करके ऐसी वनस्पति ढूढ लाओ, जिसका किसी भी औषधि म इस्तेमाल न होता हो। जीवक ने ऐसी वनस्पति को खूब ढूढा परन्तु उह ऐसी कोई वनस्पति या जडी बूटी नही मिली, जिसका किसी भी रोग के इलाज मे इस्तेमाल न हाना हो। जीवक ने जब इस बात की सूचना अपने आचाय को दी, तो उनका [illegible] अब तुम आयुर्वेद म पारगत हो गए हो। जाओ, जनता की सेवा करो।

आयुर्वेद के ग्रथा म वनस्पतिया के बारे म भी जानकारी [illegible] आयुर्वेद के अतगत वृक्षायुर्वेद का भी विकास हुआ। [illegible] [illegible]था की भी रचना हुई होगी पर आज वे नही मिलते। तेरहवी [illegible]

मे शाङ्ग धर पद्धति नामक एक महत्वपूण ग्रन्थ की रचना हुई। इसके लेखक थे शाङ्ग धराचाय। शाङ्ग धर पद्धति मे उपवन विनोद के नाम से वृक्षायुर्वेद पर एक अध्याय है। इसमे मुख्यत उद्यान विनान (बागबानी) के बारे म वनानिक जानकारी दी गई है।

प्राचीन भारत अपने विविध शिल्पो और उद्योग धधो के लिए भी प्रसिद्ध था। वस्त्र निर्माण और रँगाई के लिए प्राचीन भारत की ख्याति थी। ईसा की आरम्भिक सदियो मे भारतीय कपडो की रोम के बाजारो म खूब माँग थी। अभी अठारहवी सदी तक वस्त्र निमाण मे भारत ससार का एक अग्रणी देश था। भारत ने यूरोप को चरखा दिया। लेकिन वस्त्र-उद्योग के आधुनिक यन्त्रा का आविष्कार इगलड मे हुआ है।

स्थापत्य कला म भी प्राचीन भारत काफी आगे था। स्थापत्य मे सम्बधित अनेक ग्रन्था की रचना हुई। मोहनजोदडो के निर्माण-काल से लेकर अठारहवा सदी के पूर्वाध म जयपुर नगर की स्थापना तक नगर योजन के क्षेत्र म भारत की ख्याति रही है। विजयनगर और फतेहपुर सीकरी के वभव को देखकर अनेक विदेशी यात्री चकित रह गए थे। लेकिन आधुनिक काल म चडीगढ जस नगरा क निर्माण म हमे विदेशी स्थपतियों की सहायता लेनी पडी है।

इसी प्रकार विनान और तकनीकी के ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिनमे भारत एक अग्रणी देश था। भारत ने दूसरे देशा का बहुत-कुछ दिया है और लिया भी बहुत-कुछ है। प्राचीन काल मे नान विनान का आदान प्रदान खूब हुआ है। आज हम विकसित देशा से पुन नान विनान की बातें सीखनी पड रही हैं ता इसम हीनता या अपमान की कोई बात नही है।

किसी समय मिस्र मेसोपोटामिया, यूनान और चीन जैसे देश नान विनान म बढे चढे थे। लेकिन अब इन देशो को विनान के क्षेत्र म नई तरह से खडा होना पड रहा है। आज के मिस्रवासियो के पुवजा ने ही चार पाँच हजार साल पहले नील नदी क किनारे भव्य पिरामिड खडे किए थे। ज्ञान विनान म मिस्र के पडित पुरोहित यूनानिया के गुरु थे। यूनानी विज्ञान का चरम विकास मिस्र की भूमि—सिकन्दरिया—म ही हुआ है। ईसा के पहले की तीन सदिया म सिकन्दरिया ससार का एक महान विद्याकेन्द्र था। वही मिस्र आज विकसित देशो का मुहताज है।

यही हाल भारत का है। सभी प्राचीन सभ्यताओ म धम-कम और दाश निक चिन्तन के साथ-साथ ही ज्ञान विनान का विकास हुआ है भारत मे विशेष रूप से। यूनानी विनान भारतीय विनान से इस मान म श्रेष्ठ था कि वहा

इसका काफी हद तक स्वतंत्र विकास हुआ है। अनाक्सिगोर, अनाक्सिमन्द, दमोक्रितु जैसे महान यूनानी विचारक भौतिकवादी थे। अरस्तू एक दार्शनिक था, किन्तु उससे भी बढ़कर वह एक महान जीववेत्ता था। अफलातू (प्लेटो) एक भाववादी दार्शनिक था।

इसी भाववाद के विरोध में मध्ययुगीन यूरोप में आधुनिक विज्ञान ने जन्म लिया। कोपर्निकस ज्योर्दानो ब्रूनो केपलर, गलीलियो आदि महान वैज्ञानिकों ने पुरानी मान्यताओं का विरोध करके नई वैज्ञानिक मान्यताओं को जन्म दिया। कान्ट एक भाववादी दार्शनिक थे, फिर भी उन्होंने भौतिकवाद की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया। विश्वोत्पत्ति के एक सिद्धान्त को जन्म देने के लिए उन्हें किसी सर्वशक्तिमान ईश्वर की जरूरत नहीं थी। कान्ट ने कहा था— 'यदि मुझे पर्याप्त द्रव्य मिले, तो मैं विश्व का निर्माण करके दिखा सकता हूँ।

दूसरी ओर हमारे देश में भाववाद और अध्यात्मवाद का बोलबाला रहा है। हमारे देश में चार्वाक या लोकायत मत के भौतिकवादियों की भी एक स्वस्थ परम्परा रही है। लेकिन प्राचीन काल में इन भौतिकवादियों का अन्य सभी मतों ने विरोध किया है। दूसरे देशों के भौतिकवादियों का भी यही हाल हुआ है।

अब हम भौतिकवाद के महत्व को समझ रहे हैं। इस भौतिक विश्व को माया मानकर हम विज्ञान को आगे नहीं बढ़ा सकते। अन्धविश्वासों को तिलांजली देकर ही हम विज्ञान में तेजी से उन्नति कर सकते हैं।

प्राचीन काल में ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में भारत ने दूसरे देशों को बहुत-कुछ दिया है यह हमने देखा है। आधुनिक विज्ञानों में भारतीय विज्ञान के बीज निहित हैं। पर इस विज्ञान को वैज्ञानिक विधियों की चौखट प्रदान की यूरोप के वैज्ञानिकों ने। एक उदाहरण लीजिए। प्लास्टिक सर्जरी भारत की देन है। लेकिन इसका विकास हुआ यूरोप में। आज जि[illegible] है वे प्लास्टिक सर्जरी करवाने यूरोप या अमरीका जाते हैं

वज्ञानिक साधनो और सुविधाओ के अभाव के कारण, धनी देशो में चले जाते हैं। हमारी शिक्षा-पद्धति में भी अनेक दोष हैं। पुराने ढेर सारे अन्धविश्वास हम पर हावी हैं। उपर से धनाभाव। इन्ही सब कारणो से हमारा देश तेजी स आगे नही बढ़ रहा है।

फिर भी विकासशील देशो में भारत का स्थान अगली पक्ति में है। विज्ञान के कुछ क्षेत्रो में भारत अब एक अग्रणी देश बनता जा रहा है, जैसे परमाणु ऊर्जा के क्षत्र में। वसे, प्राचीन भारत के विज्ञान की अब कोई उपयोगिता नही रह गई है। लेकिन प्राचीन भारत की वैज्ञानिक उपलब्धियो की जानकारी हमारे विद्यार्थियो एव तरुण वैज्ञानिको को अवश्य प्रेरणा देती रहेगी। यह जानकारी हमें स्मरण कराती रहेगी कि हम प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिको के कन्धो पर खडे हैं।

नम ऋषिभ्य पूवजेभ्य पूर्वेभ्य पथिकृदभ्य

—ऋग्वेद

—प्राचीन काल के ऋषियो, पूवजो और पथप्रदशकों को नमस्कार है।

इसका काफी हद तक स्वतन्त्र विकास हुआ है। अनाक्सिगोर, अनाक्सिमन्द, देमोक्रितु जैसे महान यूनानी विचारक भौतिकवादी थे। अरस्तू एक दार्शनिक था किन्तु उससे भी बढ़कर वह एक महान जीववेत्ता था। अफलातू (प्लेटो) एक भाववादी दार्शनिक था।

इसी भाववाद के विरोध में मध्ययुगीन यूरोप में आधुनिक विज्ञान ने जन्म लिया। कोपर्निकस, ज्यादानो ब्रूनो केपलर, गलीलियो आदि महान वैज्ञानिकों ने पुरानी मान्यताओं का विरोध करके नई वैज्ञानिक मान्यताओं को जन्म दिया। कांट एक भाववादी दार्शनिक थे फिर भी उन्होंने भौतिकवाद की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया। विश्वोत्पत्ति के एक सिद्धान्त को जन्म देने के लिए उन्हें किसी सर्वशक्तिमान ईश्वर की जरूरत नहीं थी। कांट ने कहा था—'यदि मुझे पर्याप्त द्रव्य मिले तो मैं विश्व का निर्माण करके दिखा सकता हूँ।'

दूसरी ओर हमारे देश में भाववाद और अध्यात्मवाद का बोलबाला रहा है। हमारे देश में चार्वाक या लोकायत मत के भौतिकवादियों की भी एक स्वस्थ परम्परा रही है। लेकिन प्राचीन काल में इन भौतिकवादियों का अन्य सभी मतों ने विरोध किया है। दूसरे देशों के भौतिकवादियों का भी यही हाल हुआ है।

अब हम भौतिकवाद के महत्व को समझ रहे हैं। इस भौतिक विश्व को माया मानकर हम विज्ञान को आगे नहीं बढ़ा सकते। अन्धविश्वासों को तिलांजली देकर ही हम विज्ञान में तेजी से उन्नति कर सकते हैं।

प्राचीन काल में ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में भारत ने दूसरे देशों को बहुत-कुछ दिया है यह हमने देखा है। आधुनिक विज्ञानों में भारतीय विज्ञान के बीज निहित हैं। पर इस विज्ञान को वैज्ञानिक विधियों की चौखट प्रदान की यूरोप के वैज्ञानिकों ने। एक उदाहरण लीजिए। प्लास्टिक सर्जरी भारत की देन है। लेकिन इसका विकास हुआ यूरोप में। आज जिनकी गाँठ में पैसा है वे प्लास्टिक *सर्जरी करवाने यूरोप या अमरीका जाते हैं।*

हाँ भारतीय अंक पद्धति अपने मूल रूप में भारत की खोज है। आज सारे संसार में इस अंक-पद्धति का इस्तेमाल होता है। इसलिए हम कहते हैं कि *भारतीय अंक-पद्धति ही संसार को भारत की सबसे बड़ी देन है। लेकिन अब हालत यह है कि इलेक्ट्रानिक गणक यन्त्र हमें विदेशों से मँगवाने पड़ते हैं।*

भारत जैसे विकासशील देशों के सामने अनेक कठिनाइयाँ हैं। पूँजीवादी देश नहीं चाहते कि विकासशील देश आगे बढ़ें। हमारे देश के अनेक तरुण

वराहमिहिर के पंचसिद्धांतिका ग्रंथ की रचना	505 ई०
ब्रह्मगुप्त का जन्म	598 ई०
ब्राह्मस्फुट सिद्धांत की रचना	628 ई०
महावीराचार्य	ईसा की नौवीं सदी
आयुर्वेदाचार्य वाग्भट	ईसा की आठवीं-नौवीं सदी
सिद्ध नागार्जुन	ईसा की आठवीं सदी
भटोत्पल	ईसा की दसवीं सदी
अल्बेरूनी	973-1048 ई०
भास्कराचार्य का जन्म	1114 ई०
सिद्धान्तशिरोमणि की रचना	1150 ई०
महाराजा सवाई जयसिंह (द्वितीय)	1686-1743 ई०

परिशिष्ट-1

भारतीय विज्ञान से सम्बन्धित प्रमुख तिथियाँ

नवपाषाण युग का आरम्भ	लगभग दस हजार वर्ष पूर्व
ताम्रयुग की सिन्धु सभ्यता	2500-1500 ई० पूर्व
भारत में आर्यों का आगमन	लगभग 1500 ई० पूर्व
ऋग्वेद की रचना और लौहयुग का आरम्भ	लगभग 1200 ई० पूर्व
शुल्वसूत्र और वेदांग ज्योतिष की रचना	ईसा पूर्व पांचवी छठी सदी
गौतम बुद्ध	563 483 ई० पूर्व
कौमारभृत्य जीवक	बुद्ध के समकालीन चिकित्सक
सिकन्दर का हमला	326 ई० पूर्व
सम्राट अशोक का शासनकाल	272 232 ई० पूर्व
विक्रम सम्वत का आरम्भ	57 ई० पूर्व
शक सम्वत का आरम्भ	78 ई०
बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन	ईसा की दूसरी सदी
चरक-संहिता की रचना	ईसा की पहली-दूसरी सदी
सुश्रुत-संहिता की रचना	ईसा की दूसरी तीसरी सदी
शून्य पर आधारित दशमिक अंक पद्धति का आविष्कार	ईसा की आरम्भिक सदियों में
विलुप्त सौर, वशिष्ठ पैतामह रोमक व पौलिश सिद्धान्तों की रचना	ईसा की आरम्भिक सदियों में
महरौली (दिल्ली) के लौहस्तम्भ का निर्माण	लगभग 400 ई०
आर्यभट का जन्म	476 ई०
आर्यभटीय की रचना	499 ई०

वराहमिहिर के पंचसिद्धान्तिका ग्रन्थ की रचना	505 ई०
ब्रह्मगुप्त का जन्म	598 ई०
ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त की रचना	628 ई०
महावीराचार्य	ईसा की नौवीं सदी
आयुर्वेदाचार्य वाग्भट	ईसा की आठवीं-नौवीं सदी
सिद्ध नागार्जुन	ईसा की आठवीं सदी
भटोत्पल	ईसा की दसवीं सदी
अल्बेरूनी	973-1048 ई०
भास्कराचार्य का जन्म	1114 ई०
सिद्धान्तशिरोमणि की रचना	1150 ई०
महाराजा सवाई जयसिंह (द्वितीय)	1686-1743 ई०

परिशिष्ट-2

पठनीय ग्रन्थ

हिंदी

भारतीय ज्योतिष (मराठी से अनूदित)	शकर बालकृष्ण दीक्षित
वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा	डा० सत्यप्रकाश
प्राचीन भारत मे रसायन का विकास	डा० सत्यप्रकाश
हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास, भाग 1	डा० विभूतिभूषण दत्त और डा० अवधेश नारायण सिह अनुवादक—डा० कृपाशकर शुक्ल
गणित का इतिहास	डा० ब्रज मोहन
आयुर्वेद का बृहद् इतिहास	अत्रिदेव विद्यालकार
प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिक	गुणाकर मुळे
अको की कहानी	गुणाकर मुळे
भास्कराचार्य	गुणाकर मुळे

अग्रेजी

History of Hindu Mathematics	Bibhutibhusan Datta & Avadhesh Narayan Singh
The Science of The Sulba	Bibhutibhusan Datta
The History of Ancient Indian Mathematics	C N Srinivasiengar
History of Mathematics, Vol I & II	D E. Smith

Title	Author
Science in History, 4 Vols	J D Bernal
History of Hindu Chemistry Vol I & II	P C Roy
Ancient Indian Medicine	P Kutumbish
The Classical Doctrine of Indian Medicine (Translated from French)	J Filliozat
Indian Science and Technology in the Eighteenth Century	(Ed) Dharampal
Nagarjuna	K S Murty
Alberuni s India	Dr Edward C Sachau

A Concise History of Sciences in India
Edited by the National Commission for the Compilation of History of Sciences in India

मूल सम्कृत ग्रन्थो की सूची लम्बी है । इनकी जानकारी मैंने पुस्तक मे दी है । इनम से अनेक ग्रन्थो के हिन्दी व अग्रेजी अनुवाद उपलब्ध हैं ।

शब्दानुक्रमणिका

हिन्दी-अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली

अकगणित, पाटीगणित	Arithmetic
अक-पद्धति	Numeral System
अक सकेत, सख्याक	Numerals
अक्षराक	Letter numerals
अनन्त	Infinity
अनुपात	Ratio
अपरिमेय सख्या	Irrational Number
अयस्क, कच्ची धातु	Ore
अवकलन-गणित	Differential Calculus
इस्पात	Steel
उद्यान विज्ञान, बागवानी	Horticulture
एस्ट्रोलेब	Astrolabe
कबीलाई	Tribal
कलन-गणित	Calculus
काँसा कांस्य	Bronze
कीमियागर	Alchemist
कीमियागरी	Alchemy
कृषिकर्म	Agriculture
क्रमचय	Permutation
गणक-यत्र, सगणक	Computer
गणितज्ञ	Mathematician
गणित-ज्योतिष	Astronomy
गणित-ज्योतिषी	Astronomer
गुणांक	Factor
चिकित्सक वैद्य आयुर्वेदाचार्य	Physician

चिकित्साशास्त्र	Medicine Medical Science
जीवा	Chord
जैव रसायन	Biochemistry
ज्या, साइन	Sine (Sin)
ज्योतिष, खगोल विज्ञान	Astronomy
ज्योतिषी खगोलविद	Astronomer
ज्योतिभौतिकी	Astrophysics
टीका	Commentary
ढलवाँ लोहा	Cast Iron
ढलाईघर	Foundry
तकनीक	Technique
तकनीकी	Technology
ताम्रयुग	Copper Age
त्रिकोणमिति	Trigonometry
दशमिक दशमलव	Decimal
दीर्घवृत्त	Ellipse
धातुकर्म	Metallurgy
धूमकेतु	Comet
नक्षत्र मंडल, तारा-मंडल	Constellation
नवपाषाण युग	Neolithic Age
पंचांग	Calendar Almanac
परमाणु-ऊर्जा	Atomic Energy
पशु चिकित्सा	Veterinary Science
पारा पारद	Mercury
पाषाण युग	Stone Age
पिटवाँ लोहा	Wrought Iron
प्लास्टिक सर्जरी	Plastic Surgery
फलित ज्योतिष	Astrology
फलित ज्योतिषी	Astrologer
बाँट	Weight
बीजगणित	Algebra
भारतीय अंतर्राष्ट्रीय अंक	Indian International Numerals

भावचित्र	Indeogram
भौतिकवाद	Materialism
भौतिकी	Physics
महापाषाण संस्कृति	Megalithic Culture
मूल्य मान	Value
रसायन	Chemistry
रेखागणित ज्यामिति	Geometry
लौहयुग	Iron Age
लौहस्तम्भ	Iron Pillar
वनस्पति विज्ञान	Botany
वात भट्टी	Blast Furnace
विकास	Development Evolution
विज्ञान	Science
वेधयन्त्र	Astronomical Instrument
वेधशाला	Observatory
वैज्ञानिक	Scientist
वृक्षायुर्वेद	Science of Plants Botany
शल्य चिकित्सा	Surgery
शब्दांक	Word Numerals
शांकव-गणित	Conic Sections
संख्या सिद्धान्त	Number Theory
संकेत	Symbol
संचय	Combination
संस्कृति	Culture
सन्निकट मान	Approximate Value
सभ्यता	Civilization
समाकलन	Integral Calculus
सीमा सीमान्त	Limit, Limiting Value
सौर पंचांग	Solar Calendar
स्थानमान पद्धति	Position Value System
स्थापत्य वास्तुशिल्प	Architecture
हस्तलिपि	Hand Written book

भावचित्र	Indeogram
भौतिकवाद	Materialism
भौतिकी	Physics
महापाषाण संस्कृति	Megalithic Culture
मूल्य, मान	Value
रसायन	Chemistry
रेखागणित, ज्यामिति	Geometry
लौहयुग	Iron Age
लौहस्तम्भ	Iron Pillar
वनस्पति विज्ञान	Botany
वात भट्ठी	Blast Furnace
विकास	Development Evolution
विज्ञान	Science
वेधयन्त्र	Astronomical Instrument
वेधशाला	Observatory
वैज्ञानिक	Scientist
वृक्षायुर्वेद	Science of Plants Botany
शल्य चिकित्सा	Surgery
शब्दांक	Word Numerals
शांकव-गणित	Conic Sections
संख्या सिद्धान्त	Number Theory
संकेत	Symbol
संचय	Combination
संस्कृति	Culture
सन्निकट मान	Approximate Value
सभ्यता	Civilization
समाकलन	Integral Calculus
सीमा सीमान्त	Limit Limiting Value
सौर पंचांग	Solar Calendar
स्थानमान पद्धति	Position Value System
स्थापत्य, वास्तुशैली	Architecture
हस्तलिपि	Hand Written book